< Ref/Index etc. >

अभिज्ञानशाकुन्तलम्

(ABHIJÑĀNAŚĀKUNTALAM)

डॉ. वेद प्रकाश शास्त्री

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

येन पूतस्तरति दुष्कृतानि ।

A

॥ श्रीः ॥

विद्याभवन प्राच्यविद्या ग्रन्थमाला

१०८

****

ॐ गुरुदेवाय नमः

महाकविकालिदासप्रणीतम्

अभिज्ञानशाकुन्तलम्

'प्रकाश'-संस्कृत-हिन्दी-आङ्ग्लव्याख्यात्रयोपेतम्

व्याख्याकार

डॉ० वेदप्रकाश शास्त्री

एम० ए० (हिन्दी-संस्कृत), स्वर्णपदक विजेता

पी-एच्० डी०, डी० लिट्०, डी० एस्सी०

साहित्याऽऽयुर्वेदरत्न, विद्याभास्कर, आयुर्वेदबृहस्पति

चौखम्बा विद्याभवन

वाराणसी

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

प्रकाशक

चौखम्बा विद्याभवन

(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक)

चौक (बैंक ऑफ बड़ोदा भवन के पीछे)

पो. बा. नं. 1069, वाराणसी 221001

दूरभाष : 2420404

ई-मेल : cvbhawan@yahoo.co.in

© सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

पुनर्मुद्रित संस्करण : 2015

मूल्य : ५००.००

अन्य प्राप्तिस्थान

चौखम्बा पब्लिशिंग हाउस

4697/2, भू-तल (ग्राउण्ड फ्लोर)

गली नं. 21-ए, अंसारी रोड

दरियागंज, नई दिल्ली 110002

दूरभाष : 32996391

❖

चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान

38 यू. ए. बंगलो रोड, जवाहर नगर

पो. बा. नं. 2113

दिल्ली 110007

दूरभाष : 23856391

❖

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

के. 37/117 गोपालमन्दिर लेन

पो. बा. नं. 1129, वाराणसी 221001

दूरभाष : 2335263

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

THE
VIDYABHAWAN PRACAYAVIDYA GRANTHAMALA
108
****

ABHIJÑĀNA ŚĀKUNTALAM

OF

MAHĀKAVI KĀLIDĀSA

Edited with
'Prakāśa' Sanskrit-Hindi-English Commentaries

By
Dr. Ved Prakash Shastri
M.A. (Hindi & Sanskrit) (Gold Medalist)
Ph. D., D. Litt., D. Sc.
Sahitya-Ayurvedaratna, Vidyabhaskar
Ayurveda-Brihaspati

CHOWKHAMBA VIDYABHAWAN
VARANASI

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

Publishers :

CHOWKHAMBA VIDYABHAWAN
(Oriental Publishers & Distributors).
Chowk (Behind Bank of Baroda Building)
Post Box No. 1069
Varanasi 221001
Tel. # 0542-2420404
e-mail : cvbhawan@yahoo.co.in

All Rights Reserved

Also can be had from :

CHAUKHAMBA SURBHARATI PRAKASHAN
K. 37/117, Gopal Mandir Lane
Post Box No. 1129
Varanasi 221001

CHAUKHAMBA SANSKRIT PRATISHTHAN
38 U.A. Bungalow Road, Jawahar Nagar
Post Box No. 2113
Delhi 110007

CHAUKHAMBA PUBLISHING HOUSE
4697/2, Ground Floor, Street No. 21-A
Ansari Road, Darya Ganj
New Delhi 110002

Printed at Ratna Offsets Ltd.
Kamachha, Varanasi

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

आत्मनिवेदन

हिन्दी साहित्याकाश के हिमांशु गोस्वामी तुलसीदास के सम्बन्ध में यह सूक्ति प्रसिद्ध है—

''कविता करके तुलसी न लसे, कविता लसी पा तुलसी की कला''।

यही अथवा कहा जाय कि इससे भी बढकर महत्ता भगवती वाग्देवी के वरदपुत्र महाकवि कालिदास की है। इन्हीं की महनीय कृति है ''अभिज्ञानशाकुन्तलम्''। जिसने शताब्दियों से गुलामी के भार से दबे भारतीय समाज को गर्वपूर्वक पाश्चात्य देशों की आँख में आँख डालकर यह कहने का साहस दिया कि समय के फेर से भले ही हम कैसी ही दीन-हीन दशा में क्यों न पहुँच गये हों हमारा अतीत, हमारा ज्ञान, हमारा विद्यावैभव, हमारा धर्म, हमारी सभ्यता, हमारी संस्कृति—आज भी बेजोड़ हैं और भगवान् मनु की यह गर्वोक्ति आज भी उतनी ही सार्थक है जितनी मानवीय सभ्यता के आदि-अनादि क्षण में थी—

'एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः'॥

कविवर कालिदास के 'अभिज्ञानशकुन्तलम्' को देखकर ही सही मानों में मैक्समूलर आदि पाश्चात्य विद्वानों के हृदय में भारतीय दृष्टिकोण के प्रति परिर्वतन आया था और उसके पश्चात् ही पाश्चात्य जन भारतीय स्वतंत्रता के प्रति रुचि लेने लगे थे। आगे विस्तृत भूमिका में शाकुन्तलम् के सम्बन्ध में बहुत कुछ कहा गया है अतः अधिक उस सम्बन्ध में न कहकर यहाँ इतना ही कहना पर्याप्त है कि मैंने जब महाकविकी कृतियों का अध्ययन किया तब इच्छा हुई कि इनका अनुवाद कर संस्कृत-हिन्दी-अंग्रेजी प्रेमियों के लिए इन्हें सुलभ कराया जाय जिससे वे भी महाकवि की रससिक्त भारती का आस्वादन कर भारत के अतीतकालीन आदर्श का साक्षात्कार कर सकें। भारत के सभी विश्वविद्यालयों में किसी-न-किसी पाठ्यक्रम में 'अभिज्ञानशाकुन्तल' का अध्ययनाध्यापन होता ही है अतः मेरा प्रयास रहा है कि छात्र और साहित्यप्रेमी दोनों समान रूप से इस व्याख्या से लाभान्वित हों।

यद्यपि मेरी मान्यता है कि हमारे अंग्रेजी में किये गये प्रयास से अंग्रेजी का ही साहित्य समृद्ध होता है, तथापि दक्षिण के संस्कृतानुरागियों की अंग्रेजी के प्रति अभिरुचि को दृष्टिगत रख अनुवाद अंग्रेजी में भी प्रस्तुत किया जा रहा है। मुझे यह कहने में संकोच नहीं कि कुछ दशाब्द पूर्व तक मद्रास (आज के हिन्दी-विरोधी तमिलनाडु की राजधानी) से भी जो संस्कृत ग्रंथ प्रकाशित होते थे वे शुद्ध देवनागरी लिपि में ही प्रकाशित होते थे भले ही व्याख्या तमिल या अन्य दक्षिणी भाषा में (लिपि में) क्यों न हो। इसी मद्रास में रामस्वामी नायकर आदि के प्रयत्नों से दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा की स्थापना महात्मा गाँधी के करकमलों से करा कर इस उद्घोष से माँ मेदिनी का अभिनन्दन किया था ''एक राष्ट्रभाषा हिन्दी हो, एक हृदय हो भारत जननी'' परन्तु समय की बलिहारी आज का कण-कण राजनीति से प्रेरित हो भाषा, प्रान्त के दृष्टिकोण को अपना कर इस प्रकार रोगग्रस्त हुआ कि एक हृदय की बात कोरी बात ही बनकर रह गयी। हृदयों को जोड़ने वाली कड़ी को हृदय तोड़ने वाली वस्तु समझ उसके

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अक्षरों तक से घृणा की जाने लगी, उसके अक्षरों पर अलकतरा पोता जाने लगा। तेलुगु जिसके आदिम शिलालेख स्वयं देवनागरी में उपलब्ध होते हैं तथा जिसके सहिष्णु विद्वान् स्वयं इस बात को स्वीकार करते हैं कि संस्कृत तथा देवनागरी ही मूलतत्त्व हैं वे भी कहीं कहीं भटके दिखायी देने लगे हैं। परन्तु सचेताओं के प्रयत्न से इस दिशा में सुधार हो रहा है और वह दिन दूर नहीं जब हम इस तथ्य को समझ लेंगे ''निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल'' और तब अपने ग्रन्थों को उनकी मूल भाषा में पढ़कर रसास्वादन करेंगे और व्याख्यादि के द्वारा किसी भारतीय भाषा के कोश को ही समृद्ध करेंगे, विदेशी भाषा के नहीं।

संस्कृत भारत की रक्तवाहिका नाड़ी है जिससे सभी भाषाओं को पोषण मिला है हमारे इस प्रयास से भी इस पोषण-क्रम को यत्किञ्चित् सहयोग मिलेगा। इस विश्वास के साथ मैं इसके प्रकाशक श्रीवल्लभदासजी गुप्त संचालक—चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान को साधुवाद देता हूँ जिनके सत्प्रयास से यह व्याख्या सहृदय पाठकों के करों तक पहुँच पाने में सफल हुई है। चौखम्बा-वाराणसी, वेंकटेश्वर प्रेस-बम्बई, मोतीलाल बनारसीदास आदि कुछ संस्थाएँ हैं ऐसी हैं जो तन-मन-धन से संस्कृत के प्रचार-प्रसार में अनेक वर्षों से जुड़ी हुई हैं और बिना बिक्री की चिन्ता किये ऐसे ग्रन्थों को भी प्रकाशित करती चली आ रही है जिनकी माँग सर्वथा नगण्य कही जा सकती है। आर्ष साहित्य प्रकाशन विषयक इनका यह प्रयास निश्चय ही इनके प्रकाशनों की कीर्ति को अमर करेगा।

बन्धुवर डॉ० विजयवीर विद्यालंकार एवं अंग्रेजी के विभागाध्यक्ष डॉ० धनञ्जय कुलकरणी ने अंग्रेजी व्याख्या में अपेक्षित परिवर्तन, परिवर्धन, संशोधन कर अनुवाद को अधिक उपयोगी बनाने में जो अयाचित सहयोग दिया है उसके लिए आभार मात्र ही व्यक्त कर रहा हूँ और उसी प्रकार चौखम्बा विद्याभवन के संचालक श्रीव्रजदास जी एवं वहाँ के प्रूफशोधक महोदय का भी आभारी हूँ जिन्होंने इस ग्रन्थ के प्रकाशन में अत्यधिक रुचि लेकर इसे यथासम्भव शीघ्र प्रकाशित कर विद्वज्जन के सामने प्रस्तुत करने का सत्प्रयास किया है।

मनुष्य अल्पज्ञ है, उसकी शक्ति सीमित है अतः हमारे इस प्रयास में त्रुटि रह जाना सहज सम्भाव्य है। आशा है सुधीजन त्रुटियों की ओर हमारा ध्यान आकर्षित कर उपकृत करेंगे, जिससे भविष्य में उनका परिमार्जन किया जा सके।

जन्माष्टमी २०५१ वि०
१६ अगस्त १९९४ ई०
२१-१-१९८ गाँधी बाजार,
समक्ष : उच्चन्यायालय,
हैदराबाद-५०००२
दूरभाष : ५२५००९

विदुषां वशंवदः
डॉ० वेदप्रकाश शास्त्री

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

प्रस्तावना

सत्स्वपि बहुलेषु काव्येषु तत्प्रणायकेषु च प्रसादगुणगुम्फितस्य वैदर्भीरीति-नियन्त्रितस्याद्यरसरञ्जितस्य कविकुलगौरव रविणा कालिदासेनाभिहितस्य केरल-कामिन्याः कुन्तलस्येवाभिज्ञानशकुन्तलस्य वैशिष्ट्यं कस्य मनो नाह्लादयति। यस्य किल कवित्वरसेन प्लुतमानसा मनीषिणः सहसा कमपि भावभेदमाप्नुवन्तः कठोरदुःखेष्वपि अतुलां चित्तशान्तिमुपगच्छन्तो भारतीदेव्या नवीनमिव भावं प्रत्यक्षीकुर्वन्तः स्वकर्त्तव्येषु रसाभिभवेन प्रमाद्यन्ति। काव्यनिस्यूतमलौकिकं भावजातं चक्षुषेव पश्यन्ति। यस्य च शृङ्गाररससलिलावगाहनेन वृद्धोऽपि क्षणं तरुणायते। परुषमपि ब्रह्मचारिजनहृदयं शृङ्गारैकतानं प्रियवस्तु प्रवणतामवलम्बते च। तमेव कविकुलगुरुं संस्मरन् आहुश्च केचन रसिकाः—

कालिदासकवितां नवं वयो माहिषं दधि सशर्करं पयः।
एणिमांसमबला सुकोमला सम्भवन्तु मम जन्मनि जन्मनि॥

यस्य च कवेः करुणरसप्रयोगनैपुण्येन मुहूर्त्तमपि जन्मावधि करुणभा-वमविजानतो नितरां कठोरमप्यन्तःकरणं करुणरसमयकूपे निमज्जति। प्रकाश्यते एवास्य कवेः करुणरसवर्णनचातुरी शकुन्तलायाः प्रस्थानकौतुकेऽभिज्ञानस्य तुरीयाङ्के। अभिज्ञान-शाकुन्तले वर्णितं शकुन्तलायाः प्रस्थानदृश्यमवलम्ब्य केचन कारुणिका वदन्ति—

कालिदासस्य सर्वस्वमभिज्ञानशकुन्तलम्।
तत्राऽपि च चतुर्थोऽङ्को यत्र याति शकुन्तला॥

शृङ्गारचातुरी तु कवेः सर्वत्र परिस्फुटैवेति। कविरयमुपमाप्रिय इति के वा न जानन्ति। कथयन्ति च तद्वेदिनः—

उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम्।
दण्डिनः पदलालित्यं माघे सन्ति त्रयो गुणाः॥

अथायं कवीश्वरः कदा, कस्मिन् प्रान्ते जनुरधत्त तत्र बहवो बहुप्रकारै-र्विप्रतिपद्यन्ते। महाकविना स्वयं स्वविषये किमपि नोपन्यस्तम्। ऐहिक-नश्वर-सुखविमुखानां मोक्षरूपपरमपुरुषार्थपथमात्रप्रपीत्सूनां मुनीनामिवप्राचीनानामार्य्य- गौरवभूतानां केवलं दृष्टान्तप्रदर्शनद्वारेण श्लेशत एवैहिकसुखसम्पत्तिसाधनफलकेषु खल्वैतिह्यविषयेषु नासीन्मनागपि प्रयासः। महाकविना च यत्किञ्चिन्निरूपितं तत् स्वल्पं तदपि दुर्लभम्। तस्य च काव्ये आत्मप्रतिष्ठाया लेशोऽपि नास्ति। तत्रापि स स्वभावतो विनयावनत एव अस्माकं दृष्टिपथं आयाति। तस्य विनयत्वं रघुवंश-काव्यपद्येभ्योऽवगम्यते। कादम्बरीप्रणेता बाणभट्टो हर्षचरिते महाकवेः कवित्वं प्रशशंस। उक्तञ्च तेन—

निर्गतासु न वा कस्य कालिदासस्य सूक्तिषु।
प्रीतिर्मधुरसान्द्रासु जायते॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

कुमारिलभट्टोऽपि स्वतन्त्रे तन्त्रवार्तिके—

"सतां हि सन्देहपदेषु वस्तुषु प्रणाममन्तःकरणप्रवृत्तयः ॥"

इति शाकुन्तलपदमुद्धृत्य 'प्रसिद्धिरूपं कविभिर्निरूपितं' इति वाक्य- परिपोषणार्थं कालिदासं सस्मार।

महाकविदण्डिना काव्यादर्शप्रथमाध्याये—

"प्रसादवत् प्रसिद्धार्थमिन्दोरिन्दीवरद्युति।
लक्ष्म लक्ष्मीं तनोतीति प्रतीतिसुभगं वचः ॥"

इति कालिदासकवितायास्तृतीयं चरणमुदाहृत्य प्रसादगुणो व्याख्यातः। तथा हि पूर्वोक्तप्रमाणकलापैः ख्रिष्टतृतीयशताब्दीकालात्परवर्त्तीपञ्चमशताब्दीकालशेषात् पूर्ववर्ती-कालो महाकवेः कालिदासस्याविर्भावकाल इति कैश्चिद् गवेषकैर्निरूपितीकृतमस्ति। केचन महानुभावाः महाकविकालिदासस्याविर्भावकालः ख्रिष्टीयषष्ठशताब्दीकाल इति मन्यन्ते। भारतीयजनश्रुतिरेव तेषां समालोचनाया प्रमुखाधारभूमिः। मालवदेशान्तःपातिन्यामुज्जयिनी नाम राजधान्यां विक्रमादित्यो नाम राजा आसीत्—

मत्तोऽधुना कृतिरियं सति मालवेन्द्रे,
श्रीविक्रमार्कनृपराजवरे समासीत्।
यद्राजधान्युज्जयिनी महापुरी,
सदा महाकालमहेशयोगिनी ॥

इति ज्योतिर्विदाभरणोक्तेः। तस्य च राज्ञो धन्वन्तरिप्रभृतयो रत्नभूता नव-संख्यकाः पण्डिताः सभासदो बभूवुः। तेषु महाकविः कालिदासोऽप्येकं रत्नमासीत्। तथा चोक्तं ज्योतिर्विदाभरणे—

धन्वन्तरिक्षपणकामरसिंहशङ्कुवेतालभट्टघटखर्परकालिदासाः ।
ख्यातो वराहमिहिरो नृपतेः सभायां,रत्नानि वै वररुचिर्नव विक्रमस्य ॥ इति।

ख्रिष्टजन्माव्यवहितपूर्वशताब्दीकालो विक्रमादित्यस्य काल इत्यपि कैश्चिद् अनुसन्धित्सुभिर्निरूपितम्। स एव कालो महाकवेः कालिदासस्याविर्भावकाल इति कथञ्चित् मन्तव्यम्।

बिहारोत्कलजर्नल-विंसेण्टस्मिथ-महामहोपाध्यायहरप्रसादशास्त्री प्रभृतयो-विद्वांसः मालवदेशस्थं 'मन्दसौर'(प्राचीन दशपुर)नामकं नगरं तन्निकटवर्ती किञ्चित् पुण्यस्थानं वा महाकवेर्जन्मभूमिरिति निपुणं वदन्ति—

केचित् वदन्ति बङ्गेऽस्य जन्म मालवदेशके।
मगधे विबुधाश्चान्ये मिथिलायां परेऽधुना ॥

तथाहि विक्रमसभायां सदस्यतया नवरत्नानामेकं रत्नंकालिदास आसीत्। एवमेव भोजप्रबन्धादौ भोजसभायां कालिदासस्य वर्णनाद् भोजसमयेऽपि कश्चित् कालिदास आसीत् इति सम्भाव्यते। एवमन्येऽपि कालिदासाः सन्ति ध्रुवं सम्भाव्यन्ते। राजशेखरोऽप्येवमेवाह—

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

एकोऽपि जीयते हन्त! कालिदासो न केनचित्।
शृङ्गारे ललितोद्गारे कालिदासत्रयी किमु॥ इति।

सम्प्रति हि कालिदासकृतत्वेन बहवो ग्रन्थाः समुल्लसन्ति, तेषु मुख्यतमाः— रघुवशम्, कुमारसम्भवम्, मेघदूतं, शाकुन्तलं, विक्रमोर्वशीयम्, मालविकाग्नि-मित्रम्, ऋतुसंहारम्, पुष्पबाणविलासश्चेति ग्रन्था एकस्यैव कालिदासस्येति सम्भाव्यते। उपर्युक्तग्रन्थेषु 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' नाटकं चरमोत्कर्ष-सीमायामस्तीति वक्तुं शक्यते। सम्भवतो नाटकमिदं कविना शेषजीवने निरमायि।

नाटकेऽस्मिन् धीरोदात्तो दक्षिणो नामकरो दुष्यन्तः। तृतीयाङ्कपर्यन्तं शकुन्तला कन्या मुग्धा च। ततः परं स्वकीया मध्या च नायिका। विप्रलम्भशृङ्गारः प्रधानो रसः वीरकरुणादयो गौणभूतरसाः। विप्रलम्भशृङ्गारस्तु गान्धर्वविवाहात् प्राक् पूर्वरागात्मकः ततः परं प्रवासरूपः। नाटकेऽस्मिन् प्रसादो गुणः, वैदर्भी रीतिश्च।

१९८, गाँधी बाजार, हैदराबाद दक्षिण,
गंगा दशहरा, १९५४ वि०
७-६-१९७७ ई०

विदुषां वशंवदः
डॉ० वेदप्रकाश शास्त्री

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

भूमिका

महाकवि कालिदास भारतीय मनीषा के परमोज्ज्वल प्रतीक रूप में संस्कृत साहित्य में प्रतिष्ठित हैं। विश्व साहित्य में उनकी कृतियों का तो महत्त्वंपूर्ण स्थान है ही साथ ही विश्व के लोकप्रिय कवियों और नाटक कारों में भी उनका महत्त्वपूर्ण स्थान है। प्रकृति की लीलाभूमि में जीवन बिताने वाले महाकवि ने अपने महाकाव्यों, ऋतुसंहार, मेघदूत जैसे लघुकाव्यों एवं अभिज्ञानशाकुन्तल, विक्रमोर्वशीय आदि नाटकों में जो अनुपम सौन्दर्य अनुस्यूत किया है, उसकी क्षमता संस्कृत साहित्य में ही नहीं विश्व के किसी भी साहित्य में दुर्लभ है। लोक-प्रियता की दृष्टि से कालिदास आज भी अद्वितीय ही ठहरते हैं। उनकी कृतियाँ विद्वानों तथा सामान्य शिक्षित जनों में समान रूप से प्रिय हैं। यदि कहा जाय कि संस्कृत साहित्य का अध्ययन कालिदास की कृतियों से ही होता है तो कोई अतिशयोक्ति न होगी। मूर्धन्य टीकाकार मल्लिनाथ ने कालिदास की रचनाओं के सम्बन्ध में जो प्रशस्ति लिखी है उससे उक्त कथन का समर्थन अनायास उपलब्ध हो जाता है। वे लिखते हैं—

वाणीं काणभुजीमजीगणदवाशासीच्च वैयासिकीम्
अन्तस्तन्त्रमरंस्त पन्नगगवीगुम्फेषु चाजागरीत्।
वाचामाकलयद्रहस्यमखिलं यश्चाक्षपादस्फुराम्
लोके भूद्यदुपज्ञमेव विदुषां सौजन्यजन्यं यशः॥

अर्थात् महर्षि कणाद का वैशेषिक दर्शन, भगवान् वेदव्यास का वेदान्त दर्शन, शेषावतार पतंजलि का महाभाष्य, अक्षपाद गौतम का न्यायदर्शन आदि शास्त्रीय ग्रन्थों का जिसने यथावत् अध्ययन कर लिया है वही कालिदास की रचनाओं का रसास्वादन कर सकता है। इस कथन से यह स्पष्टत: ध्वनि होता है कि कालिदास की सूक्तियों का सम्यग् रूप से आस्वादन करना केवल दिग्गज पण्डितों के ही वश ही बात है। संस्कृत काव्य-ग्रन्थों के टीकाकारों में मल्लिनाथ का मूर्धन्य स्थान है। संस्कृत के अनेक जटिल काव्यों पर यदि उनकी टीकाएँ उपलब्ध न होतीं तो वे आज इतने लोकप्रिय न होते। कालिदास की रचनाओं को दृष्टिगत रख कर स्वयं मल्लिनाथ ने अपने सम्बन्ध में कहा है—

कालिदासगिरां सारं कालिदासः सरस्वती।
चतुर्मुखोऽथवा ब्रह्मा विदुर्नान्ये तु मादृशाः॥

अर्थात् कालिदास की रचनाओं का सार अद्यावधि मात्र तीन ही हृदयंगम कर पाये हैं—एक चतुरानन ब्रह्मा, दूसरी वाग्देवी सरस्वती तथा तीसरे स्वयं कालिदास। मेरे समान अल्पज्ञ जन तो उन्हें समझ पाने में सर्वथा असमर्थ ही रहे हैं।

मल्लिनाथ जैसे प्रकाण्ड विद्वान् जब कालिदास की रचनाओं के यथावत् रसास्वादन में स्वयं को अशक्त प्रतिपादित करते हों तब अन्य विद्वानों की क्षमता का अनुमान स्वयं ही लगाया जा सकता है। अत: नि:संकोच कहा जा सकता है कि कालिदास की रचनाएँ दिग्गज विद्वानों के मनन का विषय हैं। वे अत्यन्त सरस, सरल तथा सुबोध होते हुए भी परम गम्भीर एवं निगूढ भावों से गुम्फित हैं।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

महाकवि कालिदास की कृतियाँ संस्कृत साहित्य की अमर निधि हैं। इन्हीं के कारण भारत का आदर अखिल विश्व में उस समय हुआ जब भारत दासता की बेड़ियों में जकड़ा हुआ था। अभिज्ञानशाकुन्तल का अध्ययन कर प्रसिद्ध जर्मन कवि गेटे ने कहा था—

हे मित्र! यदि तुम वासन्ती तारुण्य के मनोहर पुष्प और ग्रीष्म तुल्य प्रौढावस्था के उत्तमोत्तम फल तथा आत्मा को प्रभावित करने वाली श्रेष्ठ सामग्रियाँ एकत्र ही पाना चाहते हो तो कालिदास की शकुन्तला पढो। उसके रससलिल में अवगाहन कर न केवल तुम्हारी आत्मा ही सन्तुष्ट और शान्त होगी प्रत्युत तुम्हें स्वर्ग और भूतल की सकल समृद्धियाँ भी वहाँ एक ही स्थान पर सुलभ हो जायेंगीं।

श्री वासुदेव विष्णु मिराशी ने गेटे के इस भाव को संस्कृत पद्य में गुम्फित कर लिखा है—

वासन्तं कुसुमं फलं च युगपत् ग्रीष्मस्य सर्वं च यत्
यच्चान्यन्मनसो रसायनमतः सन्तर्पणं मोहनम्।
एकीभूतमभूतपूर्वमथवा स्वर्लोकभूलोकयो-
रैश्वर्यं यदि वाञ्छसि प्रियसखे! शाकुन्तलं सेव्यताम्॥

कालिदास को शताब्दियों पूर्व 'कविकुलगुरु' कहा गया था, आज भी वे उक्त पदवी के अन्वर्थक अधिकारी हैं। उनकी उपलब्ध कृतियाँ आज भी उसी प्रकार सम्मानभाजन हैं जिस प्रकार शताब्दियों पूर्व थीं। इसका एक मात्र कारण यही है कि वे मानव-जीवन की शाश्वत कामनाओं और प्रवृत्तियों के सूक्ष्म द्रष्टा कवि हैं। उनके काव्य की स्रोतस्विनी ऐसे अगाध सौन्दर्य एवं प्रेम की लहलहाती पृष्ठभूमि पर प्रवहमाण है, जो सदैव आर्द्रतासम्पन्न रहती है। उन्होंने ऐसी मानवीय समस्याओं को अपना कार्य-विषय बनाया है जो देश-काल की सीमा में आबद्ध नहीं हो सकतीं। असीम सौन्दर्य का सतत दर्शन, पावन प्रेम का पूजन, सर्वस्व समर्पण की भावना उनके काव्य का कमनीय आधार है।

कालिदास की सूक्ष्म दृष्टि केवल बाह्य सौन्दर्य की उपासिका नहीं थी अपितु सभी अवस्थाओं में अक्षुण्ण रहने वाले सौन्दर्य की उपासिका थी। चराचर विश्व में व्याप्त प्रकृति नटी की स्वर्गीय सुषमा को वे मानव-सौन्दर्य में प्रतिमूर्त देखते थे। नारी-अंगों का सौन्दर्य ही उनका प्रिय वर्ण्य विषय नहीं था, प्राकृतिक उपादानों के वर्णन को भी उन्होंने उतना ही महत्त्व दिया है जितना नारी के सौन्दर्य-वर्णन को। नारी उनकी दृष्टि में मात्र उपभोग की वस्तु नहीं थी इसीलिए रघुवंश के अजविलाप प्रसंग में नारी के प्रति अपनी भावनाओं का उद्घाटन उन्होंने अज के मुख से इस प्रकार कराया था—

गृहिणी सचिवः मिथः सखी, प्रिय शिष्या ललिते कलाविधौ।
करुणाविमुखेन मृत्युना हरता त्वां वद किं न मे हृतम्॥

कालिदास के प्रेम की परिणति केवल उद्दाम कामवासना की क्षणिक तृप्ति मात्र नहीं थी, उनके पात्रों में अपने प्रेम की रक्षा के लिए समस्त जीवन का उत्सर्ग कर देने की निष्ठा है। कालिदास सौन्दर्य को प्रेम में तथा प्रेम को जीवन समर्पण में सफल मानते थे।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

कालिदास के प्रेम और सौन्दर्य की कल्पना प्राचीन भारतीय विचारधारा के सर्वथा अनुरूप है। कालिदास ने प्रेम की सार्थकता को विवाह में तथा विवाह की सार्थकता को प्रजोत्पादन के मांगलिक व्यापार में स्वीकार किया है। रघुवंश में उनका यह कथन उक्त कथन का प्रमाण है—

'प्रजायै गृहमेधिनाम्'।

इसी विशेषता के कारण उनकी कृतियाँ देश काल की सीमा में आबद्ध न रहकर सार्वभौम प्रतिष्ठा की अधिकारिणी बन सकी हैं।

कालिदास, का प्रकृतिप्रेम विश्वविश्रुत है। उनके समान प्रकृतिप्रेमी अन्य कोई विश्व साहत्यि में दिखायी नहीं पड़ता। सामान्य कवियों की भाँति वे प्रकृति को केवल उद्दीपन विभाव के रूप में ही नहीं देखते थे बल्कि वे उसे प्रेम का पूरक मानते थे। उनकी दृष्टि में मानवीय सौन्दर्य का मापदण्ड प्राकृतिक सौन्दर्य ही था। वे मानते थे कि जब मनुष्य प्रकृति के जीवन से पृथक् हो जाता है तब उसकी अन्तश्चेतना मन्थर हो जाती है, आध्यात्मिक भूख मर जाती है और उसमें समाज–कल्याण की भावना सर्वथा तिरोहित हो जाती है। उनका प्रकृतिप्रेम पूर्ण कमनीयता के साथ अभिज्ञानशाकुन्तल में अनुस्यूत हुआ है। प्रकृति के साथ मानवीय मधुर सम्बन्धों की मनोरम छटा जिस रूप और परिमाण में शाकुन्तल में दृष्टिगत होती है उसकी तुलना अन्यत्र दुर्लभ है। कालिदास की लोकप्रियता का अन्य कारण है उनकी सुललित, सरस तथा सरल भाषा। वाग्देवी के वरदपुत्र होने के नाते वे चाहते तो जटिल काव्य की रचना कर अपना प्रभुत्व सिद्ध कर सकते थे, परन्तु उन्होंने कभी ऐसा प्रयास नहीं किया। उन्होंने न अलंकारों के भार से कविताकामिनी के कमनीय कोमल कलेवर को व्यथित करने का प्रयास किया है और न ही जटिल छन्दों के बन्ध में कविता को उलझाकर इस स्थिति में पहुँचाया है कि उसे समझने के लिए किसी को सिर खपाना पड़े। वे अपनी कविताकामिनी को इस प्रकार हृदयाकर्षक बनाना चाहते थे कि उसके दर्शन मात्र से पण्डित–अपण्डित सभी उसकी ओर आकृष्ट हो सकें और अपने इस उद्देश्य में वे किस सीमा तक सफल रहे हैं, यह उनके काव्य के परिशीलन से स्वयमेव जाना जा सकता है।

उनकी लोकप्रियता का दूसरा कारण है—उनकी मौलिक उद्‌भावनाएँ। वर्ण्य विषय प्राचीन ग्रन्थों से लेकर भी उन्होंने अपनी कल्पना के रंगों से उन्हें इस प्रकार सँवारा है कि वे न केवल नये बन गये हैं बल्कि सर्वथा मौलिक ही प्रतिभासित होने लगे हैं।

कालिदास की प्रसादगुणपूर्ण ललित पदावलीमण्डित परिष्कृत शैली उनकी वैदर्भी रीति के जिस प्रकार सर्वथा अनुरूप है, उसी प्रकार उनकी सुकुमार कल्पना भी मधुर भावों की अभिव्यंजना में पूर्ण समर्थ है। रस और अलंकार उनके सहज सहचर हैं, जो उनकी इच्छानुसार विषय का अनुगमन करते हैं। उन्होंने सामान्यतया उत्प्रेक्षा, दृष्टान्त, अर्थान्तरन्यास, अनुप्रास, उपमा, स्वभावोक्ति आदि अलंकारों का प्रयोग किया है सही परन्तु स्वभावोक्ति तथा उपमा के प्रयोग में जो सफलता उन्हें मिली है वह अन्यत्र दुर्लभ है। कालिदास की उपमा के सम्बन्ध में तो 'उपमा कालिदासस्य' की उक्ति विश्वविख्यात ही है। यदि उनकी समस्त कृतियों से उनकी अनवद्य उपमाएँ एकत्रित की जायें तो मात्र उनके आधार पर ही यह

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

निःसंकोच कहा जा सकता है कि उनकी प्रतिभा सर्वतोमुखी थी तथा शास्त्रज्ञान, व्यवहारज्ञान एवं अनुभव की दृष्टि से वे अद्वितीय थे।

मानसिक उद्वेगों एवं भावों के सूक्ष्म द्रष्टा तथा उनके यथावत् प्रतिपादक के रूप में भी कालिदास अद्वितीय ही ठहरते हैं। शृंगार की विविध भावनाओं के तो वे सर्वश्रेष्ठ चित्रकार थे ही। भाव, भाषा प्रतिपादन किसी भी दृष्टि से देखें तो कालिदास अद्वितीय प्रतिभा एवं काव्यशक्ति सम्पन्न ही दृष्टिगोचर होते हैं। यही कारण है कि मूर्धन्य आलोचकों ने उनके सम्बन्ध में कहा—''प्राचीन काल में कवियों की गणना का प्रसंग उपस्थित होने पर सर्वप्रथम कालिदास का नाम का कनिष्ठिका अँगुली पर रखा गया। किन्तु उनकी समता में अन्य नाम न आ पाने के कारण दूसरी अँगुली पर किसी का नाम जा ही नहीं सका। परिणामस्वरूप कनिष्ठिका के बाद की दूसरी अँगुली का नाम अनामिका पड़ गया। आज भी कालिदास के समान कोई और कवि न होने के कारण उस अँगुली का नाम 'अनामिका' सर्वथा सार्थक सिद्ध हो रहा है।

पुरा कवीनां गणनाप्रसङ्गे कनिष्ठिकाधिष्ठितकालिदासः।
अद्यापि तत्तुल्यकवेरभावादनामिका सार्थवती बभूव॥

प्रकृष्ट गद्यकार बाणभट्ट ने कालिदास की विशेषताओं को हृदयंगम कर उनके सम्बन्ध में कहा है कि कालिदास की आम्रमंजरी के समान सरस और मधुर कविताओं को सुनकर किस सहृदय के हृदय में आनन्द की बाढ़ नहीं आ जाती—

निर्गतासु न वा कस्य कालिदासस्य सूक्तिषु।
प्रीतिर्मधुरसान्द्रासु मञ्जरीष्विव जायते॥

कविवर सोड्ढल ने कालिदास की प्रशंसा करते हुए लिखा है—''वे कविश्रेष्ठ कालिदास धन्य हैं जिनकी उज्जवल कीर्ति उनकी निर्दोष कविता के समान अमृततुल्य तथा मधुर है। जिस प्रकार उनकी वाणी सूर्यवंश का पूरा वर्णन करने में समर्थ सिद्ध हुई है वैसे ही उनकी कीर्ति भी समुद्र के उस पार पहुँच गई है।''

ख्यातः कृती सोऽपि च कालिदासः शुद्धा सुधा स्वादुमती च यस्य।
वाणीमिषाच्चण्डमरीचिगोत्रसिन्धोः, परं पारमवाप कीर्तिः॥

इससे स्पष्ट होता है कि कालिदास की कीर्ति बहुत पहले ही विदेशों में फैल चुकी थी। कविवर श्रीकृष्ण ने कालिदास की भाषा के सम्बन्ध में लिखा है—''कमलिनी की भाँति अस्पृष्ट दोषवाली (रात्रि में विकसित होने वाली, दूसरे पक्ष में दोष रहित) मुक्ताहार की भाँति गुणसमूह से युक्त (अनेक सूत्रों में गुम्फित, दूसरे पक्ष में प्रसादादि गुणों से युक्त), प्रियतमा के अंक की भाँति विमर्द से (मींजने आदि से तथा परीक्षण से) आह्लादकारिणी भाषा कालिदास के अतिरिक्त अन्य किसी को सुलभ नहीं हो पाई है''—

अस्पृष्टदोषा नलिनीव हृष्टा हारावलीव ग्रथिता गुणोघैः।
प्रियाङ्कपालीव विमर्दहृद्या न कालिदासादपरस्य वाणी॥

ध्वन्यालोककार आनन्दवर्धनाचार्य ने कालिदास के महाकवित्व को स्वीकारते हुए कहा है—''यद्यपि संसार में अनेक कवि उत्पन्न होते हैं, तथापि उनमें से कालिदास के समान दो-तीन अथवा पाँच-छः व्यक्ति ही महाकवि की उपाधि के अधिकारी होते हैं—

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अस्मिन्नतिविचित्रकविपरम्परावाहिनि संसारे कालिदास-प्रभृतयो द्वित्रा पञ्चषा वा महाकवय इति गण्यन्ते ॥

गोवर्धनाचार्य ने कालिदास की प्रशंसा करते हुए कहा है—''कालिदास की सूक्तियाँ साभिप्राय, मधुर तथा कोमल रतिविलासिनी (सुकुमार एवं मनोहर रमणी) के कलकण्ठ स्वर की भाँति शिक्षा देते समय भी हमें आनन्द से विभोर कर जाती हैं—

साकूतमधुरकोमलविलासिनीकण्ठकूजितप्राये ।
शिक्षासमयेऽपि मुदे रतिलीला कालिदासोक्ती ॥

आचार्य मम्मट ने कविता का उद्देश्य '**कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे**' प्रतिपादित किया है और वह अक्षरशः कालिदास की कविता में उपलब्ध होता है।

जीवनवृत्त—

अभिज्ञानशाकुन्तल, विक्रमोर्वशीय, मालविकाग्नि मित्र नाटकों; रघुवशं, कुमारसम्भव, मेघदूत तथा ऋतुसंहार जैसी महनीय कृतियों के कृती कालिदास का जीवनवृत्त प्रायः तिमिराच्छन्न ही कहा जा सकता है। एक जनश्रुति के अनुसार वे उज्जयिनी के परम प्रतापी शासक विक्रमादित्य के नवरत्नों में से एक थे। कहा जाता है कि वे शैशव में निपट मूर्ख थे। कुछ चलते-पुर्जे पण्डितों ने परम विदुषी विद्योत्तमा के साथ उनका शास्त्रार्थ कराकर, उन्हें विजयी घोषित कर उसके साथ उनका विवाह करा दिया था परन्तु शीघ्र ही कालिदास की मूर्खता प्रकट हो जाने पर विद्योत्तमा ने उन्हें अपने घर से निकाल दिया। इस घटना से दुःखी होकर कालिदास ने भगवती की आराधना कर उनके कृपाप्रसाद से अपूर्व वैदुष्य प्राप्त किया और घर लौटकर पत्नी से घर के द्वार खोलने के लिए इस प्रकार कहा—'अनावृतकपाटं द्वारं देहि'। विदुषी पत्नी ने पति की वाणी पहचान कर अपनी जिज्ञासा शान्त करने के लिए पूछा—'अस्ति कश्चिद् वाग्विशेषः' अर्थात् क्या तुम्हारी वाणी में कुछ विशेषता आ गई है। कालिदास ने पत्नी का तात्कालिक समाधान तो किया ही साथ ही कालान्तर में उसके प्रश्न के अस्ति, कश्चिद्, वाग् तीनों पदों को लेकर प्रथम पद से

'**अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः**'—कुमारसंभव, द्वितीय पद 'कश्चित्' को लेकर '**कश्चित् कान्ताविरहगुरुणा स्वाधिकारात्प्रमत्तः**'— मेघदूत तथा तृतीय पद 'वाग्' को लेकर '**वागर्थाविव सम्पृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये**'— रघुवंश जैसे महाकाव्यों का प्रणयन कर अपनी प्रतिभा की छाप इस प्रकार कालपृष्ठ पर छोड़ी कि आज भी वह अजर- अमर बनकर उनकी यशःपताका फहरा रही है।

कालिदास के सम्बन्ध में लंका में किंवदन्ती प्रसिद्ध है। उसके अनुसार कालिदास श्रीलंका (सिंहल) नेरश कुमारदास के महाकाव्य 'जानकीहरण' के प्रशंसक थे। राजा ने यह सुनकर उन्हें अपने यहाँ बुलाया और उनका बहुत आदर-सत्कार किया। वहाँ रहते हुए कालिदास राजा के अतीव प्रिय पात्र बन गये। वहाँ उनकी घनिष्ठता एक सुन्दरी दासी से हो गई जिसके कारण वहीं कालिदास का निधन हुआ। राजा कालिदास के निधन से इतने दुःखी हुए कि उन्होंने कवि की चिता में कूद कर आत्महत्या कर ली। कहा जाता है कि सिंहल द्वीप के दक्षिण भाग में अभी तक कालिदास की समाधि विद्यमान है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

कालिदास की जन्मभूमि के सम्बन्ध में पर्याप्त मतभेद है। कुछ लोग उन्हें बंगाली, कुछ काश्मीरी, कुछ मालवा निवासी तथा कुछ वर्तमान उत्तरप्रदेश का निवासी उन्हें सिद्ध करते हैं; परन्तु अद्यतन खोजों ने उत्तराखण्ड के केदार क्षेत्रान्तर्गत 'कविट्ठा' (कवेः स्थितिः यत्रासीत्) को उनका जन्मस्थान प्रतिपादित करने का प्रयास किया है और बताया है कि यहीं के नैसर्गिक वातावरण में जन्मे और अभिवर्धित होने के कारण कालिदास प्रकृति का सही चित्रण कर पाने में सफल रहे हैं। जन्मभूमि के समान ही उनके स्थितिकाल में भी मतभेद है। अधिकांश भारतीय विद्वान् ईसा से ५७ वर्ष पूर्व उनकी स्थिति मानते हैं। कुछ विद्वान् चौथी से छठी शताब्दी तक उनकी स्थिति को दोलायमान करते दृष्टिगोचर होते हैं परन्तु कवि के अन्तः साक्ष्य के अभाव में कुछ निर्णयात्मक रूप में कह पाना असंभव-सा ही है।

कालिदास की रचनाओं में उनके उज्जैन के प्रति लगाव का दिग्दर्शन होता है जिससे प्रतिभासित होता है कि सही जन्मभूमि एवं कर्मभूमि तो उज्जयिनी उनकी थी ही। मेघदूत में वे यक्ष से अपनी प्रियतमा के पास जाने वाले मेघ से कहलाते हैं—

वक्रः पन्था यदपि भवतः प्रस्थितस्योत्तराशां।
सौधोत्सङ्गप्रणयविमुखो मास्म भूरुज्जयिन्याः॥

अर्थात् उत्तर दिशा की ओर प्रस्थान करते हुए यद्यपि मार्ग कुछ टेढ़ा पेड़गा तथापि तुम उज्जयिनी के राजभवनों को देखना न भूलना।

उन्होंने उज्जयिनी का तो बहुशः उल्लेख अपनी रचनाओं में किया ही है साथ ही उज्जयिनी में प्रवाहित शिप्रा नदी तथा वहाँ के अधिष्ठातृ देवता महाकाल का सादर उल्लेख करना भी वे नहीं भूले हैं।

कालिदास की कृतियों में नगाधिराज हिमालय तथा गंगा के प्रति विशेष पक्षपात पाया जाता है जिससे विदित होता है कि उनकी स्थिति इन क्षेत्रों में पर्याप्त समय तक रही होगी। भारत के प्रायः सभी क्षेत्रों का पूर्णतः अवलोकन भी उन्होंने खुले नेत्रों से किया था जिसके कारण वे उन सबका जीवन्त वर्णन कर पाये।

व्यक्तित्व—

कालिदास की रचनाओं के अध्ययन से स्पष्टतः विदित हो जाता है कि उनका व्यक्तित्व अतीव प्रभावशाली था। वे सहृदय, सौन्दर्योपासक तथा विशुद्ध प्रेम के पुजारी थे। विश्व के सभी सुखों और समृद्धियों का उन्होंने उपभोग किया था। प्रकृति के अनन्य उपासक होते हुए भी नारी-सौन्दर्य के प्रति उनका विशेष आकर्षण था। वे आदर्शवादी प्राचीन भारतीय आदर्शों के प्रति अगाध श्रद्धासम्पन्न थे। भारतीय संस्कृति के मूल्यवान् तत्त्वों की उन्होंने सर्वत्र प्रयत्नपूर्वक रक्षा की है और श्रुति, स्मृति, आचार ग्रन्थों की मान्यताओं का यथाशक्य संरक्षण किया है। वर्णाश्रम धर्म के प्रति अपनी अटूट निष्ठा का दिग्दर्शन उन्होंने अपनी कृतियों में प्रतिपद कराया है। राजतन्त्र के अनुयायी होते हुए भी उन्होंने 'राजा प्रकृतिरञ्जनात्' के आदर्श को उसका प्रथम गुण प्रतिपादित किया है। उत्कृष्ट नरेश में जिन गुणों को वे अनिवार्य मानते थे उनका दिग्दर्शन उन्होंने महाराज दिलीप के चरित्र के व्याज से रघुवंश के प्रथम सर्ग में कराया है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

उनकी रचनाओं के अध्ययन से विदित होता है कि उन्हें कभी अभाव का सामना नहीं करना पड़ा था। दुःख के दर्शन उन्हें वियोग अथवा मृत्यु के माध्यम से ही किये थे। स्वभाव से गम्भीर होते हुए भी वे विनोदप्रिय थे। अपने विदूषकों में हास्यरस का पूर्ण परिपाक दिखा कर उन्होंने इस बात को स्वतः सिद्ध कर दिया है। आयुर्वेद, संगीतशास्त्र, ज्योतिष, व्याकरण, धर्मशास्त्र, लोकव्यवहार, पुराण, इतिहास, साहित्य आदि का उनका गम्भीर अध्ययन था। संगीत और चित्रकला के वे अनन्य प्रेमी थे और घुमक्कड प्रकृति के थे। उनके पात्रों द्वारा उनकी इन प्रवृत्तियों पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है।

समष्टि रूप में साहित्य, संगीत और कला तीनों क्षेत्रों में कालिदास को विशेष निपुणता प्राप्त थी। लोकव्यवहार में उनकी अबाध गति थी और मानव-जीवन की सभी स्थितियों में उनका अनुभव नितान्त गम्भीर और व्यापक था। इन सब विशेषताओं के अधिष्ठान कालिदास महाकवि भर्तृहरि के इस कथन को अन्वर्थक बनाते दृष्टिगोचर होते हैं—

जयन्ति ते सुकृतिनो रससिद्धाः कवीश्वराः।
नास्ति येषां यशःकाये जरामरणजं भयम्॥

कालिदास के नाटक

कालिदास ने रघुवंश, कुमारसंभव, मेघदूत, ऋतुसंहार चार काव्य तथा मालविकाग्निमित्र, विक्रमोर्वशीय और अभिज्ञानशाकुन्तल तीन नाटकों का प्रणयन किया है और मात्र इन तीन नाट्यकृतियों के कारण वे मूर्धन्य नाटककार के सर्वमान्य पद पर अधिष्ठित हो गये हैं। उपर्युक्त तीनों नाटकों में 'मालविकाग्निमित्र' कालिदास की पहली नाट्यकृति है। यह निर्णय इस आधार पर किया गया है कि इसमें उनकी अन्य दो नाट्यकृतियों के समान रूपक प्रतिभा की चारुता के दर्शन नहीं होते। हाँ, इतना सत्य है कि अभिनय, संवाद तथा कथानक की मधुरता की दृष्टि से यह नाटक भी संस्कृत नाटकों में अपना प्रमुख स्थान रखता है, भले ही अभिज्ञानशाकुन्तल जैसी मनोज्ञता उसमें नहीं है। कालिदास जैसे रससिद्ध कवि के प्रथम प्रयास के लक्षण इसमें स्फुट हैं। प्रकारान्तर से इस नाटक का यह कथन भी हमारे कथन को प्रमाणित करता है दृग्गोचर होता है—'न तो पुराना होने से सब अच्छा हो सकता है और न नया होने से कोई काव्य उपहास अथवा उपेक्षा का पात्र ही बन जाता है। विद्वज्जन परीक्षा करके उत्तम को अंगीकार करते हैं। दूसरों के अनुभव अथवा विश्वास के आधार पर अपनी राय कायम करना तो मूर्खों का काम हैं—

पुराणमित्येव न साधु सर्वं, न चापि काव्यं नवमित्यवद्यम्।
सन्तः परीक्ष्यान्वतरद् भजन्ते मूढः परप्रत्ययनेयबुद्धिः॥

यहाँ हम सभी नाटकों पर विचार न कर मात्र अभिज्ञानशाकुन्तल पर ही प्रकाश डालने का यत्किञ्चित्प्रयास करेंगे।

अभिज्ञानशाकुन्तलम्—

अभिज्ञानशाकुन्तलम् का विश्व-साहित्य में मूर्धन्य स्थान है। इसके सम्बन्ध में यह सूक्ति प्रसिद्ध है—

'काव्येषु नाटकं रम्यं तत्र रम्या शकुन्तला'।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अर्थात् काव्यों में नाटक तथा नाटकों में अभिज्ञानशाकुन्तल से बढ़कर रम्य रचना अन्य नहीं है। इस नाटक में महाकवि कालिदास की नाट्य कला का ही चरम विकास नहीं हुआ है, अपितु उनकी काव्यप्रतिभा, सूक्ष्म पर्यवेक्षण एवं मानवीय संवेदनाओं का भी यह सर्वोत्तम उदाहरण है। यह नाटक अपनी ऐतिहासिक परन्तु अभिनव कथावस्तु, रोचक शैली, रचना-कौशल, स्वाभाविकता तथा आदर्श चरित्रों के कारण इतना लोकप्रिय है कि शायद ही कोई संस्कृत साहित्यिक रसिक इसकी रसमाधुरी का आस्वाद किये बिना रह सका हो। इस नाटक में सात अंक हैं तथा इसके आदि और अन्त में देवाधिदेव भगवान् शंकर की स्तुति इस बात की परिचायक है कि कालिदास परम शैव थे और 'विद्याकामः शिवं जपेत्' कथन में पूर्ण आस्था रखते थे।

इस नाटक की मूलकथा 'महाभारत' के आदिपर्व से ली गई है किन्तु कवि ने अपनी अलौकिक प्रतिभा से इसमें अनेक मौलिक परिवर्तन करके इसकी कथावस्तु का इतना मनोहर विकास किया है कि परवर्ती साहित्य में अभिज्ञानशाकुन्तल की कथावस्तु को ही ऐतिहासिक सामग्री के रूप में मान्यता प्राप्त हुई है। इस नाटक में नायक सम्राट् दुष्यन्त तथा नायिका कण्व ऋषि पालिता कन्या शकुन्तला के मिलन, वियोग तथा पुनः मिलन की कथा को बड़े रोचक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। कथासार इस प्रकार है—

''हस्तिनापुर-निवासी पुरुवंश के प्रतापी समाट् दुष्यन्त एक दिन शिकार खेलते हुए कण्वमुनि के आश्रम के निकट जा पहुँचे। वहाँ एक मृग के पीछे उन्होंने अपना रथ दौड़ाया परन्तु मृग वेगपूर्वक मुनि के आश्रम में प्रविष्ट हो गया। राजा ने उसके वध के लिए बाण का संधान किया ही था कि दो मुनियों ने उसे आश्रम के मृग का वध करने से रोक दिया। राजा के अनुचर पीछे छूट गये थे। वह अकेला ही मुनि के आश्रम में प्रविष्ट हुआ। मुनि कण्व की अनुपस्थिति में उनके शिष्यों ने उनका आतिथ्य किया। विश्रामोन्मुख सम्राट् ने वहीं दो सखियों के साथ वृक्ष सींचती हुई परम सुन्दरी शकुन्तला को देखा। उसके नवयौवन एवं लावण्य से दुष्यन्त अभिभूत हो उठे। इसी मध्य शकुन्तला के केशपाश के फूलों की मधुर गन्ध का अनुसरण करता हुआ एक भ्रमर शकुन्तला के मुखकमल पर मँडराने लगा जिससे भीत होकर शकुन्तला ने अपनी सखियों को सहायता के लिए पुकारा, परन्तु सखियों ने परिहास में कहा कि इसे भगाने की शक्ति हममें नहीं है, इसके लिए तुम इस देश के शासक-सम्राट् दुष्यन्त को पुकारो, क्योंकि तपोवन और उसके निवासियों की रक्षा का भार शासक पर ही होता है।

दुष्यन्त पहले ही शकुन्तला के अनुपम सौन्दर्य पर रीझे हुए थे और किसी बहाने उससे मिलना चाहते थे। शकुन्तला की 'बचाओ, बचाओ' परक गुहार से उन्हें अनायास शकुन्तला से मिलने का अवसर मिल गया। किन्तु वे स्वयं को दुष्यन्त के रूप में प्रकट करना उचित न समझ कर दुष्यन्त के धर्माधिकारी के रूप में उसके सामने पहुँचे। उन्हें देखते ही शकुन्तला भी मुग्ध हो गई। राजा को शकुन्तला की सखियों से यह जानकर कि शकुन्तला मुनि कण्व की कन्या नहीं मेनका और विश्वामित्र की कन्या है; विश्वास होने लगा कि अब तक जिसे वह अग्नि समझ रहा था वह तो शरीर पर धारण करने योग्य रत्न है, अतः मेरी मनोकामना अवश्य पूरी होगी। बातचीत के अन्तराल में सखियों पर भी यह रहस्य प्रकट हो

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

गया कि शकुन्तला और दुष्यन्त दोनों के हृदय में एक-दूसरे के लिए प्रेमांकुर उत्पन्न हो चुके हैं। उन्होंने कहा भी कि यदि आज तात कण्व आश्रम में विद्यमान होते तो···· ।

आश्रम में ही दुष्यन्त और शकुन्तला गान्धर्व विधि से विवाह कर लेते हैं। इसके कुछ ही समय बाद राजा को आवश्यक कार्यवश हस्तिनापुर लौटना पड़ता है। लौटते समय राजा अपने नाम की अंगूठी शकुन्तला को देते हुए उसे शीघ्र ही अनुचरों द्वारा राजधानी बुलाने का आश्वासन देकर वहाँ से प्रस्थान करता है।

इधर दुष्यन्त के वियोग में शकुन्तला शून्य हृदय हो आत्म विस्मृत होकर समय बिता रही थी कि एक दिन अचानक क्रोधावतार महर्षि दुर्वासा कण्वाश्रम में पधारे। शून्यहृदया शकुन्तला उनका यथोचित स्वागत-सत्कार कर पाने में असफल रही जिससे क्रुद्ध होकर दुर्वासा ने उसे इस प्रकार शाप दिया—''जिसके स्मरण में तुम इतनी भूली हुई हो कि तुम्हें मुझ जैसे अतिथि के स्वागत-सत्कार का भी ध्यान नहीं रहा है, वह तुम्हें इस प्रकार भूल जायेगा कि याद दिलाने पर भी तुम्हें याद नहीं करेगा।'' यह शाप सुनकर शकुन्तला की सखियों ने महामुनि से शकुन्तला को क्षमा कर देने का आग्रह किया। उनकी प्रार्थना पर रीझ कर दुर्वासा ने अपने शाप में इतना संशोधन किया कि इसका पति इसे भूलेगा तो अवश्य परन्तु जब उसे उसकी अंगूठी दिखायी जायेगी तब उसे इसकी याद आ जायेगी।

मुनि का शाप प्रतिफलित हुआ। राजधानी में पहुँचकर दुष्यन्त इस प्रकार व्यस्त हुआ कि उसे शकुन्तला का स्मरण तक नहीं रहा। इधर कण्व तीर्थयात्रा से लौटे। यज्ञशाला में प्रवेश करते ही आकाशवाणी द्वारा उन्हें शकुन्तला और दुष्यन्त के गान्धर्व विवाह तथा शकुन्तला के गर्भवती होने का समाचार मिला। उन्होंने शकुन्तला को पतिगृह भेजने की तैयारी की और अपने दो शिष्यों के साथ शकुन्तला को हस्तिनापुर रवाना किया।

अभिज्ञानशाकुन्तल में शकुन्तला की विदाई का प्रसंग इतना करुण, सहज और आकर्षक है कि पाषाणहृदय भी द्रवित हो उठता है। स्वयं महर्षि कण्व के मुख से इस अवसर पर निकल पड़ता है कि मुझ जैसे विरक्त को यदि कन्या का वियोग इतना क्लेश पहुँचा सकता है तो सामान्य गृहस्थजन इसे किस प्रकार सहन कर पाते होंगे? शकुन्तला निसर्ग की कन्या थी। प्रकृति के आँचल में ही उसका शैशव और कैशोर्य बीता था। माता मेनका द्वारा छोड़ने के बाद पक्षियों ने ही उसे लाड़ लड़ाया था, अत: वन के पशु-पक्षी, वृक्ष-लताएँ सब में उसका ममत्व था। कालिदास ने मानवीय ममत्व इनमें अनुस्यूत कर ऐसा सजीव चित्रण किया है कि विश्व साहित्य में यह बेजोड़ हो गया है। आश्रमवासी पशु-पक्षी, मानव सभी आश्रम से शकुन्तला की विदाई ठीक उसी प्रकार करते हैं जैसे गृहस्थ अपनी कन्या की करते हैं। वीतराग महर्षि कण्व का समूचा आश्रम करुणा में आप्लावित हो जाता है। पशु-पक्षी, लता-वृक्ष सभी करुणविगलित हो फूट पड़ते हैं। शकुन्तला हस्तिनापुर की ओर प्रस्थान करती है परन्तु आश्रम की ममता उसे इस प्रकार अभिभूत करती है कि वह अपने पोषक पिता कण्व से पूछती है कि तात! मैं पुन: कब आपके चरणों में आ सकूँगी? महर्षि कण्व कहते हैं—पुत्री! जब तू चकवर्ती सम्राट् की जननी बनकर और अपने बेटे को साम्राज्य का भार सौंपकर अपने पति के साथ वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश करेगी तभी यहाँ आ पायेगी। इसके साथ ही

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

महर्षि शकुन्तला को आदर्श गृहिणी बनने के लिए कुछ सीख देते हैं जिसे कवि ने अभिज्ञानशाकुन्तल के चतुर्थ अंक के चार श्लोकों में अनुस्यूत किया है और ये चार श्लोक कवि के आदर्श दृष्टिकोण के ऐसे अमर परिचायक है कि इन्होंने अपने साथ-साथ कवि को, उसकी गहरी पैठ को भी विश्व-साहित्य में सदा-सदा के लिए अजर-अमर बना दिया है। इसके पश्चात् महर्षि के ये शिष्य--शार्ङ्गरव और शारद्वत—तथा आर्या गौतमी के साथ शकुन्तला पतिगृह की ओर प्रस्थान करती है।

दुष्यन्त शकुन्तला को सर्वथा विस्मृत कर चुका था। जब कण्व के दो शिष्यों, आर्या गौतमी के साथ शकुन्तला के आने की सूचना दुष्यन्त को दी गयी तो उसने यज्ञशाला में उनके स्वागत-सत्कार की व्यवस्था करने का निर्देश दिया और स्वयं भी वहाँ पहुँचा। पारस्परिक कुशल क्षेम का आदान-प्रदान होने के पश्चात् कण्व के शिष्यों ने अपने गुरु का सन्देश इस प्रकार सुनाया—"मेरी अनुपस्थिति में मेरी इस कन्या के साथ आपने जो गान्धर्व विवाह किया था वह हर दृष्टि से उचित था। आप सज्जनों तथा गुणीजनों में श्रेष्ठ हैं और शकुन्तला भी मूर्तिमती सत्कर्म है। ऐस सुयोग्य युगल का संयोग कराकर प्रजापति ने अपनी बहुत दिनों की निन्दा दूर कर दी है। अब आप अपनी इस सगर्भा सहधर्मिणी को स्वीकार करें।" किन्तु दुर्वासा के शापवश दुष्यन्त को कुछ भी स्मरण नहीं था, अतः उसने इस विवाह के सम्बन्ध में अनभिज्ञता प्रगट की। इस पर शार्ङ्गरव ने कहा कि यदि आपको अपना किया हुआ कार्य अप्रिय लग रहा हो तो भी राजा के नाते आपको अपना धर्म निभाना चाहिए। दुष्यन्त ने पुनः इनकार किया।

शकुन्तला को स्वप्न में भी राजा से इस प्रकार के व्यवहार की आशा न थी। राजा के कथन से वह चिन्तासागर में ऊभ चूभ होने लगी। आर्या गौतमी ने तभी शकुन्तला का घूंघट हटा दिया जिससे राजा उसे पहचान कर अपना ले, परन्तु राजा ने उसे अपनाने से ही नहीं उसे पहचानने तक से इनकार कर दिया। राजा के व्यवहार से खिन्न होकर कण्व के शिष्यों ने उसे ख़ूब खरी-खोटी सुनायी परन्तु राजा अविचलित रहा। अब शकुन्तला को अँगुठी की याद आयी और उसने वह दिखाकर राजा को अपने साथ विवाह की घटना याद कराने का विचार किया, परन्तु अँगुठी थी कहाँ ? वह तो शची तीर्थ में आचमन करते समय गिर चुकी थी। प्रमाण के अभाव में सभी निराश हो उठे। अन्त में आर्या गौतमी ने यह कहकर वहाँ से प्रस्थान किया कि यह आपकी पत्नी है और आप इसके पति हैं। चाहे इसे रखें चाहे निकालें। शकुन्तला भी उनके पीछे-पीछे चलने को उद्यत हुई। यह देख शार्ङ्गरव ने उसे डाटते हुए कहा—"अभागी! क्या अब तू स्वतन्त्र होना चाहती है? यदि राजा का कथन सत्य है अर्थात् उनके साथ तेरा विवाह नहीं हुआ है तो तू पतिता है अतः महर्षि कण्व के आश्रम में प्रवेश के अयोग्य है और यदि तेरा कथन सत्य है, तेरा चरित्र शुद्ध है तो तेरे लिए पतिगेह में दासी बनकर रहना भी श्रेयस्कर है।

शकुन्तला यह सुनकर वहीं जड़ होकर खड़ी रह गयी। उसकी दयनीय दशा देखकर पुरोहित सोमरात ने कहा—"महाराज! ज्योतिषियों ने कहा है कि आपका पुत्र चक्रवर्ती होगा। यदि इसके गर्भ से जन्म लेने वाले बालक में चक्रवर्ती के लक्षण दिखायी दें तो समझना

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

चाहिए कि इसका कथन सत्य है और तब इसे अन्त:पुर में निवास देना चाहिए, अन्यथा आश्रम में वापिस भेज देना चाहिए। अतः जब तक प्रसव न हो इसे मेरे यहाँ रहने दें। शकुन्तला पुरोहितजी के घर की ओर बढ़ी ही थी कि एक आश्चर्यजनक घटना घटी—अप्सरा तीर्थ के निकट एक दिव्य ज्योति उसे उठा कर ले गयी। पुरोहित से यह समाचार जानकर दुष्यन्त को सन्तोष-सा हुआ परन्तु यह सन्तोष क्षणिक ही था। वह मन-ही-मन उद्विग्न रहने लगा परन्तु लाख प्रयत्न करने पर भी उसे शकुन्तला के साथ विवाह का स्मरण नहीं आया।

दुष्यन्त का सांला हस्तिनापुर का नगरपाल था। एक दिन दो प्रहरियों के साथ वह घूम रहा था कि उसे कुम्भिलक नामक मछुआ राजा के नाम वाली अँगूठी बेचता हुआ दिखायी दिया। उसने उसे बन्दी बनाकर महाराज के सामने प्रस्तुत किया। पूछने पर उसने रोहू मछली के पेट से उसें पाने की बात बतायी। अँगूठी देखते ही दुष्यन्त को शकुन्तला के साथ विवाह की घटना स्मरण हो आयी। मछुए को पुरस्कार देकर छोड़ दिया गयां। दुष्यन्त अब शकुन्तला के लिए विकल रहने लगा। एक दिन उसने अनसूया-प्रियंवदा सखियों के साथ शकुन्तला का चित्र बनाया और उसे देख-देख कर दिन बिताने लगा। विदूषक माधव्य को छोड़कर अन्य सबसे मिलना-जुलना भी छोड़ दिया।

इसी बीच वसन्त ऋतु का आगमन हुआ। प्रति वर्ष आयोजित होने वाले वसन्तोत्सव का निषेध कर दिया गया। इधर शकुन्तला को उसकी माता मेनका अप्सरा तीर्थ से उठाकर महर्षि कण्व के आश्रम में पहुँचा आई थी अवश्य; परन्तु इस चिन्ता में थी कि दुष्यन्त से शकुन्तला का मिलन हो। इसी दृष्टि से उसने अपनी सखी सानुमती को दुष्यन्त का हालचाल लेने के लिए भेजा। सानुमती अलक्ष्य होकर दुष्यन्त के अन्त:पुर में गई और शकुन्तला के वियोग में राजा की दयनीय दशा देखकर उसने स्वर्ग लौटकर मेनका को पूरा समाचार सुनाया।

इसी बीच विदूषक माधव्य का करुण क्रन्दन राजा के कानों में पड़ा। राजा उसे बचाने के लिए दौड़ा परन्तु तिरस्कारि विद्या के प्रभाव से कोई उसे लेकर अदृश्य हो गया। माधव्य को अदृश्य करने वाला अन्य कोई नहीं स्वयं इन्द्र का सारथी मातलि था। राजा की दयनीय दशा देखकर उसने उसे क्रुद्ध करने के लिए यह उपाय किया था। राजा की बेचैनी देखकर मातलि ने प्रकट होकर इन्द्र के रथ की ओर इंगित कर कहा—"महाराज! इस समय दानवों के साथ देवराज इन्द्र का घोर युद्ध हो रहा है। उन्होंने अपनी सहायता के लिए आपको तत्काल बुलाया है। दुष्यन्त यह सुनते ही तत्काल युद्ध में भाग लेने के लिए चल पड़े। वहाँ जाकर उन्होंने दानवों को परास्त किया जिससे इन्द्र प्रसन्न हुए। उन्होंने देवताओं के सामने दुष्यन्त को अपने सिंहासन पर बिठाया और बड़े आदर-सत्कार के बाद उन्हें अपने रथ में बिठाकर विदा किया। स्वर्ग से उतरते हुए मातलि ने हेमकूट पर्वत पर अपना रथ उतारा और कहा— "महाराज! यह सामने महर्षि कश्यप का आश्रम है और यहीं पर महर्षि तपस्या में लीन हैं।" राजा महर्षि के आश्रम की प्राकृतिक शोभा को देखकर मुग्ध हो गये और बोले—'यह तपोवन और इसके निवासी धन्य हैं।"

मातलि ने पता लगाया कि महर्षि कश्यप इस समय अपनी पत्नी अदिति तथा अन्य ऋषिपत्नियों को पातिव्रत धर्म का उपदेश कर रहे हैं। राजा को एक अशोक के वृक्ष के नीचे

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

ठहराकर वह महर्षि कश्यप को राजा के आगमन की सूचना देने गया। इसी मध्य राजा का दक्षिण बाहु फड़कने लगा और कुछ दूरी पर स्त्रियों की आवाज सुनायी पड़ी, जिनके साथ एक चंचल बालक खेल रहा था। उन्होंने देखा—वह शिशु इतना धृष्ट और निर्भय है कि सिंहशावक का मुँह फाड़कर उसके दाँत गिनना चाहता है—''जृम्भस्व रे सिंहशावक! जृम्भस्व दन्तान् ते गणयिष्यामि। तपस्विनी स्त्रियाँ उसे इस कार्य से विरत करना चाहती हैं परन्तु वह उनकी बात पर कोई ध्यान ही नहीं देता। उस बालक को देखकर दुष्यन्त के हृदय में स्नेह की तरंगें उठने लगती हैं। तपस्विनियाँ दुष्यन्त से उस बालक को इस खेल से रोकने का अनुरोध करती हैं। दुष्यन्त उसे यह कह कर इस क्रीड़ा से विरत करने का प्रयास करता है कि 'एक ऋषिकुमार को ऐसा नहीं करना चाहिए'। धीरे-धीरे दुष्यन्त को विदित होता है कि यह बालक शकुन्तला का पुत्र है और इसके शरीर में चक्रवर्ती के लक्षण स्फुट हैं। इतने में एक तापसी घबराकर कहती है कि उसकी भुजा में बँधा हुआ रक्षाकवच कहाँ गया ? राजा नीचे गिरे हुए रक्षा कवच को उठाकर बालक की भुजा में बाँधने के लिए उसे उठाने के लिए झुकता है परन्तु तापसी उसे उस कवच को उठाने से रोकती हुयी कहती है—इसके माता-पिता के अतिरिक्त अन्य व्यक्ति यदि इसे छूयेगा तो महर्षि कश्यप के शाप से यह सर्प बनकर उसे ड्स लेगा। क्योंकि राजा उस कवच को हाथ में थाम चुका था अतः उसे विश्वास हो जाता है कि बालक उसी का पुत्र है। उधर तापसियाँ भी बालक की आकृति का राजा से साम्य देखकर तथा कवच से राजा को किसी प्रकार की हानि होते न देखकर समझ जाती हैं कि आगन्तुक अन्य कोई नहीं स्वयं राजा दुष्यन्त हैं।

तभी शकुन्तला वहाँ आई। राजा ने उसके चरणों पर गिरकर अपने अपराध की क्षमा माँगी। शकुन्तला ने उसे क्षमा करते हुए अपने स्मरण आने का रहस्य पूछा। राजा ने अंगूठी निकाल कर दिखाते हुए कहा—इसी के कारण।

इसी समय मालति ने वहाँ आकर पुत्र तथा पत्नी के मिलने पर राजा को वधाई दी। सब मिलकर कश्यप एवं अदिति के पास पहुँचे और सबने महर्षि को प्रणाम किया। महर्षि ने ऋषि दुर्वासा के शाप का विवरण सुनाते हुए उन्हें आशीर्वाद दिया तथा अपने शिष्य द्वारा महर्षि कण्व को भी दुष्यन्त-शकुन्तला मिलन का समाचार भिजवा दिया।

अभिज्ञानशाकुन्तल का वैशिष्ट्य

अभिज्ञानशाकुन्तल की कथा का मूलोत्स है महाभारत, जिसके सम्बन्ध में वेदव्यास जी की यह गर्वोक्ति प्रसिद्ध है—

'यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत् क्वचित्'। परन्तु अभिज्ञानशाकुन्तल की कथा महाभारत की अपेक्षा अतीव पृथुल एवं परिवर्तित है। इस नाटक का आरम्भ इतने प्रभावशाली ढंग से हुआ है कि प्रथम दृश्य में ही पाठक अभिभूत होकर रह जाता है। महाकवि ने कथा को इच्छानुसार परिवर्तित कर अपनी प्रतिभा-कूची से इस प्रकार सँवारा है कि कथा ही नहीं पात्रों के व्यक्तित्व में भी अन्तर आ गया है। प्रेम और सौन्दर्य का सरस, हृदयग्राही और मर्मस्पर्शी चित्रण जैसा अभिज्ञानशाकुन्तल में हुआ है, अन्यत्र दुर्लभ है। राजदरबार और तपोवन का स्वरूप एवं सम्बन्ध, स्वर्ग और मर्त्यलोकवासियों का सम्बन्ध, वर्णाश्रम धर्म तथा

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

चारों वर्णों के पारस्परिक सम्बन्ध का अति सौहार्द्रपूर्ण चित्रण इस नाटक की सर्वोपरि विशेषता कही जा सकती है।

काव्यरसों की मोहक छटा के कारण अभिज्ञानशाकुन्तल के दृश्यों का अपना महत्त्व है। शृंगार के दोनों पक्षों—संयोग और वियोग—का जितना सजीव चित्रण अभिज्ञानशाकुन्तल में मिलता है उतना अन्यत्र विरल ही सम्भव है। शकुन्तला दुष्यन्त की वियोगाग्नि में तपकर पाठक भी विगलित हुए बिना नहीं रहते। शकुन्तला की विदाई का प्रसंग तो विश्व साहित्य में अद्वितीय ही सभी ने एक स्वर से स्वीकार किया है। इन्हीं विशेषताओं को दृष्टिगत रखकर शाकुन्तल के सम्बन्ध में कहा गया है—

काव्येषु नाटकं रम्यं तत्र रम्या शकुन्ला।
तत्रापि च चतुर्थोऽङ्कस्तत्र श्लोकचतुष्टयम्॥

शाकुन्तल के चतुर्थ अङ्क के प्रायः सभी दृश्य करुण रस से ओतप्रोत हैं। इस नाटक में यथाप्रसंग वीर, हास्य, अद्भुत, रौद्र तथा वात्सल्य रसों का पूर्ण परिपाक हुआ है। इसमें ओज के साथ मनोज्ञता तथा क्षिप्रता के साथ भावप्रांजलता का अनुपम समन्वय है। कालिदास नारी एवं प्रकृति सौन्दर्य के अनुपम चितेरे हैं। उनकी रससिक्त तूलिका का चमत्कार शाकुन्तल में सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है। उनके वर्णन इतने सजीव हैं कि रंगों और रेखाओं के बिना ही उनके द्वारा प्रस्तुत दृश्यों का अवलोकन किया जा सकता है।

अपनी प्रकृति के अनुसार महाकवि ने शाकुन्तल की समाप्ति भी सुखान्त ही रखी है। इसके अन्तिम दृश्य में वियुक्त प्रेम के संयोग की जो परिणति कवि ने प्रस्तुत की है उसमें लोक- कल्याण की शाश्वत पृष्ठभूमि सन्निहित है। सर्वदमन अर्थात् भरत के रूप में इस विशाल राष्ट्र के रक्षक की ऐसी छवि के दर्शन कवि ने कराये हैं जो मोहक तो है ही, प्रेरक भी है। महर्षि कश्यप के आश्रम में रहते हुए जो संस्कार भरत के मन पर पड़े हैं उनका दिग्दर्शन कवि ने इतनी कुशलता से कराया है कि शारीरिक तथा मानसिक क्षमता की किशोर मूर्ति पाठक को भावविभोर कर जाती है। अपने राष्ट्र को भी इस अवसर पर कवि भुलाता नहीं। उसके लिए उसके कण्ठ से यह मंगलकामना प्रस्फुटित होती है—

प्रवर्ततां प्रकृतिहिताय पार्थिवः।
सरस्वती श्रुतिमहती न हीयताम्॥

कालिदास के अतिरिक्त लोकमंगल की ऐसी उदात्त भावना अन्यत्र मिल पाना असम्भव ही है। शाकुन्तल में धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चतुर्विध पुरुषार्थों का सामंजस्यपूर्ण प्रतिपादन अतीव व्यावहारिक और प्रेरणाप्रद है। कवि ने राजा को अहर्निश प्रजा के कल्याणकामी के रूप में प्रस्तुत कर 'राजा प्रकृतिरञ्जनात्' की आर्ष कामना को मूर्त करने का प्रयास किया है।

कालिदास वस्तुतः प्रेम के कवि थे और यही कारण है कि उनकी कृतियों में जुगुप्सा और घृणा के दर्शन चेष्टा करने पर भी नहीं होते। सुन्दरता उन्हें अतीव प्रिय है और उन्होंने **'भवन्ति भव्येषु हि पक्षपाताः'** की सूक्ति को सर्वत्र गरिमा प्रदान की है, तथापि उनके मन में

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

कुरूपों, दलितों और अभागों के प्रति जो सहानुभूति है वह उनके दृष्टिकोण को उजागर कर देने मे समर्थ है।

भाषा-शैली—

शाकुन्तल की भाषा एवं शैली सर्वथा अभिनव है। संस्कृत साहित्य में इसकी तुलना किसी अन्य ग्रन्थ से नहीं की जा सकती। स्वयं कालिदास को भी इसकी जैसी सफलता अपनी अन्य कृतियों में नहीं मिली है। सम्भवत: यही कारण है कि समीक्षक इसे कवि की अन्तिम एवं अनवद्य रचना मानते हैं। इसकी भाषा अतीव सरस, सजीव, प्रांजल, परिमार्जित एवं प्रवाहमयी है। इसके संवादों में इतनी सहजता, क्षिप्रता, प्रभावोत्पादकता एवं चुस्ती है कि पात्रों का व्यक्तित्व स्वयं साकार हो उठता है। यथास्थान लोकोक्ति और मुहावरों के समुचित प्रयोग से भाषा की शक्ति सौन्दर्य में अकल्पनीय वृद्धि हुई है। उपमा, उत्प्रेक्षा, स्वभावोक्ति आदि अलंकारों के समुचित प्रयोग से इनकी कृति कितनी महनीय बन गयी है उसे उसके आस्वादन से ही जाना जा सकता है।

प्राकृतिक उपादानों के मानवीकरण द्वारा कवि ने अभिज्ञानशाकुन्तल के सौन्दर्य को कई गुणा बढ़ा दिया है। कण्वाश्रम के पशु-पक्षी-लता-वृक्ष सबमें मानवीय संवेदना की गहरी छाप है। कवि ने सर्वत्र गृहस्थधर्म की मर्यादा का पूरा-पूरा ध्यान रखा है। महर्षि कण्व जैसे वीतराग मुनि को भी राजघरानों की स्त्रियों के जीवनादर्श की जानकारी से ओतप्रोत दिखाकर कवि ने अपनी एतद्विषयक पैठ का दिग्दर्शन जिस खूबी से कराया है वह स्वयं में बेजोड़ है। शकुन्तला की आश्रम से विदायी के अवसर पर जड़-चेतन सभी का करुणाविगलित हो जाना कालिदास की व्यापक मानवीय संवेदना का जीता-जागता प्रमाण है।

कालिदास ने अपने पात्रों के चरित्रचित्रण के साथ रसव्यंजना पर भी पूरा-पूरा ध्यान दिया है। उनके अनेक पात्र इसी धरा के निवासी, अनेक दिव्य गुणों और अलौकिक सौन्दर्य के स्वामी होते हुए भी मानवीय संवेदना और सहानुभूति से जिस प्रकार ओतप्रोत परिलक्षित होते हैं वैसे अन्यत्र दुर्लभ ही हैं। उनके नायक अपने सुख के लिए नहीं सर्वसाधारण के सुख के लिए ही जीवन धारण करते हैं। वे स्वकीय वेदना को मानवता के लिए न्योछावर कर परम तोष का अनुभव करते हैं। कालिदास के प्रेमप्रसंग वासनात्मक नहीं हैं, क्योंकि रघुवंश में उन्होंने विवाह का भारतीय आदर्श इस रूप में प्रतिपादित किया है—'प्रजायै गृहमेधिनाम्'।

चरित्र-चित्रण

दुष्यन्त—शाकुन्तल के नायक दुष्यन्त धीरोदात्त प्रकृति के हैं। सुन्दरता, सुकुमारता, वीरता, धीरता, गम्भीरता उनके ऐसे नैसर्गिक गुण हैं जिनके कारण अनायास ही उनका महापुरुषत्व ज्ञापित होता है। मृगया और युद्ध दोनों के ही वे कुशल खिलाड़ी हैं। उत्कृष्ट प्रेमी होने के साथ-साथ उत्तम पति भी वे हैं और रसिकशिरोमणि होने के साथ-साथ अद्वितीय योद्धा भी हैं। आत्मसंयम के क्षेत्र में भी उन्हें अद्वितीय कहा जा सकता है। अभिशप्त दशा में शकुन्तला जैसी अपूर्व सुन्दरी को तिरस्कृत कर देना उनके आत्मसंयम का प्रमाण है। गुरुजनों के प्रति श्रद्धा-भावना, सतत प्रजा की हितकामना एवं न्यायपरक निष्ठा आदि गुण उन्हें आदर्श व्यक्ति से बढ़कर और कुछ सिद्ध करते हैं। कर्तव्यपरायणता के साथ-साथ दुर्गुणों से घृणा

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

तथा वचनपालन की प्रवृत्ति उन्हें श्रेष्ठ मानव, आदर्श राजा सिद्ध करती है। आत्मप्रशंसा से उन्हें अरुचि है और यही कारण है कि स्वर्ग से लौटते समय मातलि जब उनकी प्रशंसा करने लगता है तब वे अपने सारे कार्यों का श्रेय देवराज इन्द्र को देकर मौन हो जाते हैं। धर्म-कर्म में उनकी सूक्ष्म दृष्टि है और शास्त्रीय चर्चा के समान ही नृत्य, संगीत, चित्रकला में उनकी अप्रतिहत गति है। अद्वितीय गुणों के आधान ऐसे नायक के चरित्र-चित्रण में कालिदास को अपूर्व सफलता प्राप्त हुयी है।

शकुन्तला—कालिदास की शकुन्तला अनुपम सुन्दरी, गुणवती, शीलवती और भोली-भाली है। आश्रम में पोषित होने के कारण समस्त प्राकृतिक उपादानों से उसे अनन्य स्नेह है। वृक्षों के सींचने तथा मृगों की परिचर्या में उसके दिव्य मातृत्व की छटा दृष्टिगोचर होती है। कुलपति कण्व की पोषित कन्या होते हुए भी निरभिमानिता, आत्मगोपन की क्षमता उसकी ऐसी विशेषताएँ हैं जिनके कारण उसकी गरिमा स्वत: प्रकट होती है। भावप्रवणता के कारण महर्षि दुर्वासा के आतिथ्य में विमुख रहकर वह उनके शाप का भाजन बनती है परन्तु विषम परिस्थिति में भी अनन्य पतिप्रेम से विचलित नहीं होती। अपने गुरुजनों तथा प्रियजनों के प्रति उसके मन में अपार आदर और स्नेह है। शकुन्तला का आदर्श चरित्र भारतीय नारी की उज्ज्वल मर्यादा और गरिमा का प्रतीक है। विश्व-साहित्य में इसके समान आदर्श नारी का चित्रण सर्वथा दुर्लभ है।

इसी प्रकार शाकुन्तल के अन्य पात्रों के चरित्र-चित्रण में भी कालिदास को अपूर्व सफलता मिली है। कुलपति महर्षि कण्व नैष्ठिक ब्रह्मचारी, प्रतिदिन अग्निहोत्र करने वाले, लोकमंगल की उदात्त भावना से ओतप्रोत हैं। इसी लोकमंगल की भावना से अनुप्राणित होकर ही उन्होंने शकुन्तला को अपनी औरस पुत्री के समान पाला और उस पर पिता-माता का समन्वित प्रेम इस प्रकार उस पर लुटाया कि शकुन्तला को कभी यह जानने की आवश्यकता ही नहीं पड़ी कि उसके माता-पिता कौन थे? संसारत्यागी होते हुए भी उन्हें गृहस्थ धर्म की मर्यादा का पूरा-पूरा ध्यान रहता है। मानव-स्वभाव के वे पूरे पारखी हैं। शकुन्तला को पतिगृह भेजते समय वे उसे जो समयोचित सीख देते हैं, उससे उनके अथाह ज्ञान, सामयिक दृष्टि तथा कर्तव्यपरायणता का बोध होता है।

इसी प्रकार विदूषक के चरित्र-चित्रण में कालिदास हास्यरस की अवतारणा में पूर्ण सफल रहे हैं। वह सदा अपने पेट का ही चिन्तन करता है। राजा का मुँहलगा होने के कारण कभी-कभी वाचालता के कारण वह सब भी कह बैठता है जो मर्यादा की सीमा में नहीं आता। उसे कोई बात हजम नहीं होती फिर भी वह राजा का नर्मसचिव है। प्रकृति से भीरु एवं कोमल हृदय होने के कारण वह किसी भी प्रकार के कष्ट को सहन कर पाने में अक्षम है। यद्यपि वह सर्वथा मूर्ख नहीं तथापि दूसरों की दृष्टि में स्वयं को बुद्धू दर्शाना उसे खूब आता है।

शार्ङ्गरव और शारद्वत महर्षि कण्व के अन्तेवासी हैं। ये समयानुसार कोमल और कठोर व्यवहार करने में कुशल हैं। कुलपति महर्षि कण्व के प्रति इनके हृदय में अपार आदर भाव है। लोकाचार की भी इन्हें थोड़ी-बहुत जानकारी है, कोरे आश्रमवासी ब्रह्मचारी ही ये

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

नहीं है। राजदरबार के आचार-व्यवहार का भी इन्हें अच्छा ज्ञान है। इन दोनों की प्रकृति में थोड़ी सी असमानता है। जहाँ शार्ङ्गरव भावुक प्रकृति का है और चिरकाल तक आश्रमवास का अभ्यासी होने के कारण राजदरबार के प्रति वितृष्णा की भावना रखता है वहीं शारद्वत दार्शनिक विचारधारा का होने के कारण सांसारिक सुखभोग में डूबे हुए लोगों को देखकर करुणार्द्र हो उठता है। शार्ङ्गरव अधिक भावुक तथा असहिष्णु है। क्रोध की भावना में शीघ्र ही बह जाता है; शारद्वत प्रकृति से गम्भीर तथा क्षमाशील है। वह विवाद को शान्त करने में विशेष रुचि रखता है और देश-काल के अनुसार व्यवहार करना वह भलीभाँति जानता है।

अनसूया तथा प्रियंवदा अपने नाम के अनुरूप स्वभाववाली हैं। अपनी सखी शकुन्तला के प्रति उनके हृदय में अपार स्नेह हैं। अहर्निश शकुन्तला का हितचिन्तन वे अपना पुनीत कर्तव्य मानती हैं। दोनों ही अत्यन्त चतुर और व्यावहारिक हैं। शकुन्तला-दुष्यन्त प्रथम भेंट के समय ये दोनों कुछ दूर खड़ी रहकर देखती हैं कि कोई दूसरा उन्हें देख न ले। जब गौतमी उधर आती दीखती है तब चक्रवाक वधू के व्याज से वे शकुन्तला को सचेत कर देती हैं। दुर्वासा के शाप से उन्हें हार्दिक वेदना होती है परन्तु वे अनुनय-विनय कर उस शाप की निवृत्ति करा लेती हैं। हाँ, शकुन्तला को इस विषय में इस दृष्टि से कुछ नहीं बताती क़ि वह कहीं अकारण और अधिक उद्विग्न न हो जाय। शकुन्तला की विदायी के पश्चात् आश्रम उन्हें सूना-सूना लगने लगता है। दोनों के स्वभाव में थोड़ा-बहुत अन्तर है। अनसूया सदैव शकुन्तला को सुखी बनाने की बात सोचती है। उसे अपने सुख और आराम की तनिक भी इच्छा नहीं है। स्वभाव से वह अल्पभाषी तथा गंभीर है। इसके विपरीत प्रियंवदा प्रसन्नचित्त और मृदुभाषी है। उसकी बातों में परिहास का पुट रहता है। अनसूया संशक दृष्टिकोण वाली तथा इधर-उधर की बातें सोचने वाली है परन्तु प्रियंवदा दूसरे का विश्वास करने वाली तथा प्रत्येक प्रसंग के अच्छे पहलू को देखकर निर्णय लेने वाली है। बुराई की ओर उसका ध्यान नहीं जाता। अनसूया में भी गम्भीरता और संकट से निपटने की क्षमता है परन्तु प्रियंवदा शीघ्र ही आतंकित हो जाने वाली बालिका है।

इसी प्रकार अन्य चरित्रों के चित्रण में भी कालिदास ने पौराणिक एवं लौकिक जीवन के उच्च आदर्शों की रक्षा की है।

नाटक का नाम अभिज्ञानशाकुन्तल क्यों ?

नाटक का नाम अभिज्ञानशाकुन्तल देने का कारण यह है कि राजा दुष्यन्त ने शकुन्तला को गान्धर्व विवाह के पश्चात् अपने नामवाली अँगूठी दी थी। महर्षि दुर्वासा ने अनसूया- प्रियंवदा की प्रार्थना पर अपने शापमोचन की विधि बताते हुए कहा था—उसी अँगूठी को दिखाने पर राजा को शकुन्तला की याद आयेगी। किन्तु जब शकुन्तला के सामने अँगूठी दिखाने का अवसर आया तो वह उसके हाथ में थी ही नहीं। शचीतीर्थ में आचमन करते समय गिर गयी थी। बाद मे धीवर द्वारा जब अँगूठी राजा के पास पहुँची तब उसे शकुन्तला का स्मरण आया और वह अपने व्यवहार पर पश्चात्ताप करता हुआ विरहाग्नि में जलने लगा। क्योंकि अँगूठी के दर्शन से प्रिया शकुन्तला की याद राजा को आयी थी इसीलिए नाटक का नाम अभिज्ञानशाकुन्तलम् पड़ा। अभिज्ञान का अर्थ है—पहचानने की वस्तु या निशानी।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

KALIDASA - HIS DATE, LIFE AND WORK

We have no reliable information regarding the personal life of Kālidāsa, the greatest Indian poet. There is no evidence to prove where and when he was born, who were his parents, where and when he died. The poet has studiously observed complete silence about himself in his work. Neither directly nor indirectly does he shed any light on his personal life or on any remarkable event of his life. In this situation, we can only depend on external sources and a few incidents found here and there in his works, which may be supposed to have a distant bearing upon the history of his life. Regarding the date of the poet, we proceed here to state a few facts that can thus be known about him. A time-honoured tradition, supported by internal and external evidence, associates the name of Kālidāsa with that of the ruler of Ujjainī, king Vikramāditya. The keen interest and admiration with which the poet describes the Mahākāla (Lord Śiva), the Śiprā (sacred river of Ujjainī) confirm the idea that he must have been a native of that city or spent a lot of time there. Very often, he made various covert references to king Vikramāditya, who was his patron. The court life described by Kālidāsa also testifies that he was related to the king's court. This circumstance, coupled with the fact that there is no allusion in his writings to the goddess of wealth, having ever frowned upon him, shows that he was in affluent circumstances, and had not the misfortune ever to drink the bitter cup of poverty.

Taking into consideration the natural description of Kālidāsa some critics believe that either he was born at some hill station near the Himālayās or spent a lot of time there. Otherwise such real description was beyond his grip. Some modern critics believe that he was a native of 'Kavittha' which is situated near Kedār Kśhetra in Himālayan range.

He was a Brāhmana by caste and was a devout worshipper of Lord Śiva, though by no means a sectarian. As per his descriptions, he seems to have travelled throughout India or widely. He visited almost all the important places of Northern India. Dr.Bhau Daji says that he is the only poet who describes a living saffron flower, the plants which grow in Kāśmīr. His graphic description of the Himālayan scenes looks very much like that of one who was an eye-witness. He was the luckiest poet as he enjoyed great popularity during his life time. He was 'an admirer of field-sports', and

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

describes their benificial effects with the exactness of a true sports man. Though he was fond of pleasures, he was not an unscrupulous (unprincipled) voluptuary (a person whose life is devoted to the pursuit and enjoyment of sensual pleasure), as was supposed by some critics. This is clear from the many noble sentiments expressed by him in his best play 'Abhijñāna Śākuntalam'. It also appears from the same play that he was against love-marriages, though he was full of generous sentiments towards that fair sex. His work testifies that he was having a vast knowledge of Vedās, Upanishads, Purānās and other śāstrās. He also went through Āyurveda (Science of Medicine and life), Kāma Śāstra and Astronomy. Beyond these few facts nothing is known for certain about this great poet Kālidāsa. During the course of time, a number of legends clustered round this great poet. According to one story, in his early age the poet was totally dull but due to the blessings of Goddess Kālī he became an intellectual and then he was named Kālidāsa. Another story makes him a friend of king Kumārdāsa of Ceylon, in whose city Kālidāsa was murdered by a courtesan. Many other stories related to Kālidāsa can be found in 'Bhojaprabandha' and 'king Bhoja and poet Kālidāsa'. Other stories are narrated in different books but their veracity is doubtful.

HIS WORK

As the poet observed complete silence about himself in his works, so, it is beyond one's capacity to say any thing about his work authentically. Anyhow the scholars produce a list of the works generally attributed to him—1. Śākuntala, 2. Vikramorvaśī, 3. Mālvikagnimitra, 4. Raghuvaṁśa, 5. Kumārsaṁbhava, 6. Meghdoot, 7. Ṛitusaṁhāra, 8. Kunteshwar Dautya, 9. Ambastava, 10. Kalyāṇastava, 11. Kālī Stotra, 12. Kāyya-Natakālaṅkarah, 13. and 14. Two Gaṅgāṣṭaka, 15. Ghatkarpar, 16. Chaṇḍikā Daṇḍak Stotra, 17. Charchastava, 18. Jyotirvidābharaṇa, 19. Durghat Kāvya, 20. Nalodaya, 21. Nava Ratna Mālā, 22. Puṣpabaṇa Vilās, 23. Makarandastava, 24 and 25. Two Mangalāṣṭakas, 26. Mahā Padya Śataka, 27. Ratnakoṣa, 28. Rākshas Kāvya, 29. Lakshmistava, 30. Laghustava, 31. Vidvādvinod Kāvya, 32. Vrindāvan Kāvya, 33. Vaidya Manoramā, 34. Śuddhi Candrikā, 35. Shriṅgār Tilaka, 36. Shriṅgar Ras Śataka, 37. Shringār Sār Kāvya, 38. Śyāmalā Daṇḍaka, 39. Śrutbodh, 40. Saptaślokī Rāmāyaṇ, and 41. Setubaṅdh.

Of these the first seven are acknowledged by all critics to be

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

undoubtedly his. Whether the remaining thirtyfour works are of Kālidāsa or not, is a matter for investigation or research. There is also another fact which should be borne in mind in this connection. In Sanskrit literary history there have been many poets who borne the name Kālidāsa, and atleast three were known to Rajaśekhara, who wrote—

एकोऽपि जीयते हन्त कालिदासो न केनचित्।
शृङ्गारे ललितोद्गारे कालिदास त्रयी किमु॥

It is possible, therefore, that other Kālidāsas other than the author of first seven works are responsible for the trifling pieces mentioned above. Here, we are concerned with the first seven only. The most convenient and reliable way of studying the development of a poet's mind and relation to his works would be to read his works in their chronological order. But we have no external evidence, whatsoever, to ascertain the chronology of Kālidāsa's works. So, we can depend only on internal evidence. Judged as such, the works would stand in the order—
Poetry : Kumār Saṁbhava, Meghdoot, Raghuvaṁśa, Ritusaṁhār.
Plays : Malvikāgnimitra, Vikramorvaśi, Śākuntala.

According to critics and poet's admirers the three—Meghdoota, Śākuntala and Raghuvamśa are the outcome of the poet's matured poetic faculties and riper years.

HIS POETRY

Undoubtedly everyone can say by going through the works of Kālidāsa that he was the greatest master-mind in the field of Sanskrit poetry and plays. His talent and genius has been recognized in India from very early times. He has been and will ever remain in the hearts of his countrymen as the crowned prince of Indian poets. Most Indian scholars have expressed in suitable words their admiration for the poet who stood far ahead of them in the perfection of his art and ability. The well known author of Sanskrit novel 'Kādambarī Baṇa Bhatta praises him thus—"When Kālidāsa's sweet sayings, charming with sweet sentiment, went forth, who did not feel delight in them as in honey-laden flowers of mango tree—

निर्गतासु न वा कस्य कालिदासस्य सूक्तिषु।
प्रीतिर्मधुरसान्द्रासु मंजरीष्विव जायते॥

Kumārila (8th Century) quoting a passage from 'Śākuntala' acknowledges the greatness of Kālidāsa—

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

'सतां हि सन्देह पदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्तः करणप्रवृत्तयः'

Actually Kālidāsa stands at the top, when scholarly poets are being reckoned. According to a 'Subhāśita'- "While once the poets were being evaluated, Kālidāsa though the first, occupied the last finger. But the ring finger remained true to its name (Anāmika = nameless), since his second has not yet been found".—

पुरा कवीनां गणनाप्रसंगे कनिष्ठिकाधिष्ठित कालिदासः।
अद्यापि तत्तुल्यकवेरभावादनामिका साऽर्थवती बभूव॥

A great scholar Pandit Goverdhanācārya praising his poetry says:- "Two things only i.e. love sport and Kālidāsa's poetry, delight the heart even at the time of instruction, as they mostly consist of the sweet, delicate and touching words of a sportful girl"—

साकूतमधुरकोमलविलासिनीकण्ठकूजितप्राये ।
शिक्षा समयेऽपि मुदे रतिलीला कालिदासोक्ती॥

Prasing the works of Kālidāsa in general and his play 'Śākuntala' in particular, scholars say-" Among Kāvyas the drama is the most charming. Among dramas 'Śākuntala' is more charming. In 'Śākuntala' the fourth act is the best one and lastly four ślokas related to 'Śākuntala' are the most beautiful—

काव्येषु नाटकं रम्यं तत्र रम्या शकुन्तला।
तत्रापि च चतुर्थोऽङ्कस्तत्र श्लोक चतुष्टयम्॥

Some scholars who consider Kālidāsa the greatest among the poets in the construction of unique similies, say—

उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम्।
दण्डिनः पद लालित्यं माघे सन्ति त्रयो गुणाः॥

Among later writers, Jayadeva has called our poet-'the lord of poets and graceful plays" of the muse of poetry—"भासो हासः कविकुल गुरु कालिदासो विलासः"

Taking into consideration the above views, Indian scholars have placed him at the head of all Samskrit poets. Not only Indian scholars, but foreign scholars too, who have gone through his works either directly or through translations, have same opinion about him. The reason for placing Kālidāsa at the top of all samskrit poets is explained by someone thus—"His poetic genius has brought Samskrit poetry to the highest elegance and refinement, his style is peculiarly pure and chaste. It has neither the laxity

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

of the Purāṇās nor the extravagant colouring of later poems. It is natural and characterized by brevity consistent with perspicacity. "His simplicity of expression and an easy flowing language make his works unparalleled for their beauty and appropriateness. His compundless sentences, his similies, way of saying all made him uncrowned prince of the heart of common people along with scholars.

The modern scholars recognized that " nature must be the life and essence of poetry". Kālidāsa knew this fact long ago. He describes with most effective touches the charming and attractive scenery of Himālayās. Nothing was kept unseen by him in his descriptions about Himālayās. H̃e observed its black deers, green valleys, snow covered peaks, murmuring falls, dancing peacocks etc. with open eyes and described it all judiciously. His description of the Ganges and the peaceful hermitage-life is very srtiking and life-like. His descriptive powers are great, and some of the scenes in his different works are so enchanting that they hold his readers spellbound. In brief it can be said that he was a master of acknowledged skill.

HIS DATE—Though scholars produce research work on Kālidāsa regularly, yet his date is to be finally settled. The earliest mention of Kālidāsa by name is in the Aihole Inscription dated 634 A.D., and it furnishes the 7th century A.D. as the downward limit of the Kālidāsa's date. Tradition mentions that he was a court-poet of king Vikramāditya (who was brought down by the scholars to A.D. 544). The discovery of the Mandsor Inscription, which is dated Saṁvat 529 made this theory untenable and the traditional date remained as it is. Now comes forth the theory of 'NINE GEMS'. Nine great scholars are considered to be the 'Nine Gems' of the court of king Vikramāditya-

धन्वन्तरिक्षपणकामरसिंहशंकुवेतालभट्टघटकर्परकालिदासाः ।
ख्यातो वराहमिहिरो नृपतेः सभायां रत्नानि वै वररुचिर्नव विक्रमस्य ॥

As all these poets have lived through different ages, it is believed that the tradition can not be true. The above verse about nine gems has been compiled only to arrange a series of great poets in order.

To reach to some conslusion Prof. Max Muller divided the entire Samskrit literary period into two divisions. Among these two the first began with the Vedās and ended with the first centruy

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

A.D. and second one, during which foreigners invaded India and consequently, literary activity came to a stand still. The Professor placed the "Renaissance of Samskrit learning" in the sixth centruy A.D. starting with the reign of king Vikramāditya. If Kālidāsa is to be considered the first poet of the new school, he must be placed considerably earlier. Prof. Max Muller has done this.

Some facts quoted by Kālidāsa in his works and his quotation by Aśwaghoṣa the author of Buddhacharita, Daṇḍin the author of Kādambarī etc. compels us to place him some six or seven centuries before them. A period necessary to cause such a revolution in the art of literary composition, considering the scanty means of the propagation of learning in those times. It thus becomes clear that Kālidāsa lived in the first century B.C. at the latest.

HIS DRAMAS—For its visuality the play has more importance in literature. As it influences the audiences directly, its effect remains on the mind for a memorable time. During British period when Indians were considered as stupids and illiterates the play of Kālidāsa i.e. Śākuntala had opened their eyes and compelled them to think wisely over India, Indians, its culture, civilization, learning and heritage. Śākuntala compelled them to change their opinion about Indians and India.

All the works of Kālidasa have a unique place in the Indian literature. Kālidāsa is considered wright a great poet and a great play by all eminent scholars. As a play writer or poet he stands at the top of all other writers. His composition whether it may be a poetry or play remains unique.

Upto this day only three plays of Kalidasa are available. These are Mālavikāgnimitra, Vikramorvasī and Abhijñān Śākuntala. Though the first two plays also have much importance in Saṁskrit drama they are not comparable to Śākuntala.

The source of Kālidāsa's 'Śākuntala' is 'Mahābhārata'. Here we trace the original story of Mahābhārata to testefy how wonderfully Kālidāsa changed it for his play, with the help of his unique imagination.

Once king Duśyanta, followed by a large army entered a thick forest. There he killed various beasts. Then following a deer, he reached a calm and attractive hermitage on the banks of the rriver 'Mālinī'. Leaving his army there and his royalty's sign, he entered alone into that hermitage and sought the sage 'Kaṇva', but finding no one there he cried aloud - "who is there?" Hearing his

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

voice, a beautiful maiden, dressed in a hermit's garb came out and welcomed the king. On being asked his purpose of coming there he told her that he had come to pay reverence to sage Kaṇva, and enquired if she could tell where he had gone ?

The maiden was 'Śakuntalā', the adopted daughter of Saint Kaṇva. She replied -"my father has gone to gather fruits and roots in the forest, please wait a while, you shall see him when he returns".

In the absence of the sage, the king seeing this youthful lovely maiden, having fair hips and charming smiles, asked her "Who are you ? Whose offspring are you ? Why have you come to the forest ? You stole my heart at the first sight. I wish to know more of you".

At this, smiling Śakuntalā said - "I am the daughter of sage Kaṇva".

The king said -"Sage Kaṇva is away from all the worldly affairs such as marriage, then how do you claim to be his daughter?"

She then told him the story of her birth, as she heard from saint Kaṇva. Once Indra the Lord of the Gods afraid of the austerities of the sage Viśvamitra, sent the nymph Menakā to tempt him. She went to the sage and paid reverence to him, and while she was sportively moving towards the hermitage her garment was carried away by the wind. Seeing her naked beauty the sage was disturbed and called her to him. They stayed together for a long period and a daughter was born of the union. Menakā, leaving her daughter on the banks of the river Mālinī, returned to Indra's court. On the bank of Mālinī the newly born baby was cared for by Śākuntas (Birds) and hence was named 'Śakuntalā'. The saint found her there and reared her as his foster child.

After hearing this, Duśyanta said- "Then, you are a princes and not a saint's daughter. I pray you to be my loving bride, by rites of Gaṅdharva marriage."

Śakuntalā replied- "I am ready to accept your proposal if you promise that the son that will be born to me from [illegible], becomes the king after you."

"So be it" the king promised and married her according to the Gaṅdharva rite and lived with her. After some time he left for his capital, repeating his promise, saying that he would send a large army to bring her to his capital. Though he married Śakuntalā, he

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

was afraid of saint Kaṇva thinking of what he might do on hearing the news. After some time sage Kaṇva came back and knew it through his divine power. At this he was pleased and so, he said to Śakuntalā- "Dear child ! that you lived secretly with a man, forgetting me, is as I see it, not against the law, for the Gandharva form of marriage is declared to be the kbest for a kśatriya, when both love one another. Duśyanta is the best among wise people, noble and law-abiding, and since you have found a loving husband, you shall give birth to a noble son, mighty in the world." Śakuntalā then begged of the sage to think kindly of her husband Duśyanta. After some time she gave birth to a boy in the hermitage. He grew quickly to be a splendid boy. At the young age of six years, he rode on the backs of lions, tigers and bears near about the hermitage, tamed them and played with them. Counting the lion's teeth was his hobby. Keeping all these in view, the sage Kaṇva gave him the name 'Sarva Damana', the 'All Tamer'. Then seeing the child and his exorbitant human deeds, sage Kaṇva decided that it was the proper time to crown the child as the prince (Yuvarāja). So, he ordered his two pupils Śāradwat and Śārangrava to take Śakuntalā and her son Sarvadamana to her husband's home.

They set-out with Śakuntalā and her son for Hastināpura and led Śakuntalā into the presence of the king Duśyanta. She bowed to him and said- "This is your son, O King ! install him as crown prince, as you promised in the hermitage."

On hearing this, the king remembered every thing but said I do not know who you are and have I wedded you ? Stay or leave as you like.

Hearing these words, Śakuntalā became motionless in shame and grief. Her eyes became red with grief and anger, her lips quivered like a wind shaken leaf, and she stood watching the king steadily, concealing her feelings and controlling her anger she held in cheek the magic power that her penance had given her. She thought for a while and looked at her husband in rage and grief, and said passionately to him- "How you can say -'I do not know' like any ordinary man, when you know every thing."

"I do not know the son born of you, O, Hermit woman, women are believed to be very talkative. Who will believe your words ? Are you not ashamed to talk to me such incredible things? Get away, return to your hermit."

Śakuntalā told- "O King, remember, truth is the highest di-

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

vinity, do not break your promise, if you are not ready to remember the facts I must go away. There is no union with a man like you. Even without you my son shall protect the foursquare earth adorned with the lofty mountains. Saying thus, Śakuntalā started, then suddenly a voice from space spoke to Duśyanta- "Take your child, Duśyanta, do not scorn your wife Śakuntalā. Indeed you are the father of this child. Śakuntalā tells the truth. "Having heard this, the king jumped with joy and said to the courtiers- "Hear these words spoken from space for if I were to receive my son, solely relying on her words, he would be suspected by the people, he would not be pure."

Then he rose from his throne, received the child and embraced him. He then honoured his wife and consoled her. "Our marriage was a secret one, so, to save your reputation I was afraid that the people would think that it was a woman's passion that brought you to me. Then Duśyanta gave the name "Bharata" to 'Sarvadamana' the son of Śakuntalā and made him crown-prince.

The Changes brought by Kālidāsa in the Original plot—

How cleverly the great poet Kālidāsa introduces changes into the original story is just a matter of imagination. Going through the story of his play Śākuntala and the original story of Mahābhārata we come to know that the poet by his brilliant wit breathed the life of poetry into the dry bones of this bare and unromantic story, and made it a most moving and an ideal one. The main difference in the original story is the rejection of Śakuntalā for reasons which are any thing but convincing. So, the first great change which the poet introduces into the story is the curse of sage Durvāsā, which vanished the memory of the king and made him so blunt that he even refused to recognize Śakuntalā, his love and his own promise too. This change saves the king from moral responsibility in his repudiation of Śakuntalā. When the recognition ring which Duśyanta gave to Śakuntalā comes forth to the king the curse goes and the situation seems to be saved by the poet. It is just an accident that Śakuntalā drops her husband's ring in the holy water of Śachi Teertha, before that moment of her encounter with the king. For her this moment was really a fatal one. The curse, however, is so modified as to exert its beneficial influence for a short period only until the king sees the ring. This description brought such a beautiful change which could stun the reader or make him motionless for a moment.

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

Śakuntalā is really charming in the story of Mahābhārata. She is direct in her simplicity, and fearful innocence. So, the king's proposal of marriage is a direct one. He is not troubled by those doubts which assails a lover's heart. The poet described Śakuntalā as very attractive, charming with a honeyed tongue, even though he did not allow the king to meet her directly and ask the story of her birth. Leaving this direct way, the story of Śakuntalā's birth is most skilfully woven into the conversation of the king with her two girl friends i.e. Anasūyā and Priyamvadā. During the conversation, the king promises spontaneously to be responsible for Śakuntalā's future destiny and the promise is not extracted from him as the condition of their union. All these have been managed with absolute delicacy.

In Mahābhārata Śakuntalā goes to her husband's home six years after giving birth to his son. Thus the original story tells the separation of Duśyanta and Śakuntalā for a long period before she reaches to the capital. But in the play Śakuntalā leaves her forest-home for the capital before her son is born. And the final union takes place after a long period of suffering and remorse.

In the play this union takes place after seeing the royal-ring, but in Mahābhārata, after hearing the truth from the space.

Besides these changes, the poet has added largely from his imagination some very beautiful scenes and characters. As Rider states- "Only acts one and five with a part of act VII rest upon the ancient text, while acts two, three, four and sixth with most of seven, are certain of the poet."

Finally, it is interesting to note how cleverly the poet has utilised his sources, and the numerous epic suggestions which he has incorporated into his play. How nicely he has woven the story of Śakuntalā's recognition, divine power of sage Kanva, which saved Śakuntalā from disclosing her union with the king, the marks of imperial birth on the hand of the child; all these makes him an unparalleled poet and dramatist.

Construction and analysis of the plot—

According to the great writer Tagore- "There are two unions in Śakuntalā and the central motif of the play is the progress from the earlier union of the first three acts with its youthful beauty and romance through an interval of separation and intense and speechless agony to the ultimate union in the Elysian regions of eternal bliss described in the last act. The play, therefore, naturally falls

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

into three divisions, each having a distinct atmosphere of its own- the first four acts constituting the first division, the fifth and sixth the second, and the seventh act the last."

For the first four acts the scene is laid in the hermitage. In this act the poet has already intimated in the prelude that it was the time of pleasant summer, and even within the sacred grove every tree and plant is touched by its magic fingers. In drawing natural scenes the poet proved himself to be unparalleled. Though the hermitage area was calm and quiet and the king entered there to get peace and rest yet the presence of beauty takes all his peace away.

Then come the maidens on the scene, with their charming friend Śakuntalā in the centre. Here the poet described Śakuntalā to be as delicate as a Jasmine flower, who waters her leafy sisters and takes delight in that duty. Her unparalleled beauty is observed by the king who impressed by that remarks- "Youth with all its magic charm, blossoms within her blood." Thus the poet succeeded to paint vividly the scene of intoxicating youth. The great poet Kālidāsa knows well that the source of human inspiration is none else but nature alone. Nature is not some thing outside of man with a life-spirit and purpose of its own, but it is the background for reflecting human emotion. As Kālidāsa had taken nature as background in all his works, so, some one said about it- "Atmospheric subjectivity is one feature of Kālidāsa'a nature-poetry."

The wonderful manner in which the poet introduced the king Duśyanta to his heroine Śakuntalā is really remarkable. The black bee has left the Jasmine and is trying to settle on Śakuntalā's face. thinking it to be a blossomed lotus flower. She tries to remove it. but the bee roaming around her face distracts her. Being afraid, she calls for help, and her friend playfully suggests that she had better call on Duśyanta, the king, whose duty was to protect the hermitage. This saying (suggestion) gives room (chance) to king Duśyant who was watching them eagerly to get closer to them. Hearing the cry of Śakuntalā for help the king enters, and Śakuntalā looking at him before her, feels a strange flutter in her heart. She remains motionless. Now in the course of conversation between her friends and the king, the poet very cleverly and artistically revealed that Duśyanta the king was in every way worthy of her, and her friends too, feel that if sage Kaṇva were present he would do honour to the honourable guest and offer him his most valuable possession Duśyanta's doubts regarding her birth are cleared, when, urged by

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

him, Śakuntalā's friends narrate to him how she was the daughter of Viśvāmitra and Menakā, and is being reared not for the religious life but for marriage with some one worthy of her. Śakuntalā hearing all such becomes angry and rises to leave the spot, when Priyaṁvadā detains her saying she had promised her the watering of two trees and she could not leave before she had paid her debt, at which the king most gallantly gives her the ring to redeem her debt. This is the fatal ring which failed to prove Śakuntalā's statement in the royal court when she was in a critical position, after some time recovery of the same ring restored the memory of the king and then only he received Śakuntalā with her son. The story of ring is woven by the poet very skilfully and hence this became the soul of the play.

The other scene, the disturbance in the conversation by the elephant's trumpetting is described as a signal of the coming storm in the life of lovers, who are away from the world and its feelings. This shows the cleverness and keen observance of the poet and alertness for the reality of his plot. It thus differs from the story in Mahābhārata.

In the second act of the play, the poet described the kings pining for love, which allows him no rest even at night and deprives him of all his hobbies. He fails to enjoy even the pleasures of hunting. He recounts his feelings to his unsympathetic friend, the Vidūśaka (Jester) and gratefully receives the request of the young hermit to protect the hermitage against the attacks of the demons. Then comes a messenger from the capital and requests him on behalf of his ministers and queens to be present there at the festival, and this gives the king the opportunity to dismiss all his retinue and the jester (Vidūśaka), whom he commands not to spread scandals about Śakuntalā and him.

The Third Act in its introductory scene presents to us the love-torn Śakuntalā. The king who had returned his retinue, now seeks his love who spends those hours of mid day heat with her friends on the banks of river Mālinī. There, she is discovered lying on a bed of lotus leaves, writing, at her friend's sùggestion a love-letter in the shape of a verse to the king. How careful is the poet to show that Śakuntalā in her womanly shame has not revealed her passion even to her bosom friends for long, she discloses her heart only when she becomes perturbed by passion and when the situation compels her, she tells her friends to which state she has been

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

driven by love. Then follows a scene of ideal love or passion. Śakuntalā composes a song which breathed of the keen anguish that filled her heart, and the king who has overheard comes on the scene and assures Śakuntalā's friends about his deep rooted love for Śakuntalā. Here the poet gives a glimpse of Śakuntalā's jealousy when she says to her friends that they should not tax the honourable guest's or king's courtesy. Though Śakuntalā was blind in love, yet her friends know that the kings are prodigal in their love to many ladies. So, keeping all such in view Priyaṁvadā suspects the king's assurance but Anasūyā keeping the promise of the king remarks, whereupon the king assures them that inspite of many wives, henceforth this dear friend of ours shall be the chief glory of his harem and throne. The friends now make an excuse and leave the lovers to themselves. How cleverly the love scene is drawn is a remarkable thing. Here he never allows love to go beyond aesthetic bounds. The scene ends with the arrival of Gautamī who comes to take away Śakuntalā to the hermitage.

Among the works of Kālidāsa, the play Abhijñana Śakuntalā is considered the best. According to some well known critics, in all the available dramas in Saṁskrit, the Śākuntalam is a unique one, and in it, its Fourth Act is considered very remarkable and pleasing, and in this act specially four verses (ślokās), at the time of Śakuntalā's departure towards her husband's home, related to sage Kaṇva's teaching to Śakuntalā are counted to be not only the best one but immortal and an eternal treasure of Indian religion, culture and civilization. Especially for newly married girls these verses have much value. As these are just like guide-line and can enrich the follower with human value and raise their status too.

This Fourth Act is full of the shadows of coming events and doom. First of all, when for a long time the inhabitants of the hermitage fail to hear any news from the king or receive any messenger sent by him to bring Śakuntalā to the capital, Anasūyā, Śakuntalā's companion suspects, that surrounded by the charming ladies (queens) with their courly ways and their charming gestures the king may not remember Śakuntalā and the hermitage. Priyaṁvadā, however, assures her saying that noble persons always remain firm in their promises, they are not changeable. But the thing that troubles her (Śakuntalā) is the fear of her father, what the sage Kaṇva will say when he knows of the union. Meanwhile the dreaded sage Durvāsā comes to the hermitage (Āśrama).

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

Thinking of her husband, poor Śakuntalā is far too deeply burdened to take any kind notice of the sage. The sage Durvāsā, who expected a warm welcome from her, being an honourable guest in the hermit, seeing such negligence burnt with anger, and his curse fell on Śakuntalā like a knife of a butcher falls on the innocent lamb. The curse was- "As you forget me to receive and welcome, the person in whose love you have forgotten to welcome and give proper respect and hospitality to an honourable guest like me, even yourself, he too will forget you, and thus you have to repent for your negligence. Śakuntalā knows nothing about sage Durvāsā's arrival and his curse. But her close friend Priyaṁvadā had heard it and for the welfare of her friend Śakuntalā she pleases the dreaded sage Durvāsā. Then the sage Durvāsā graciously grants that- "although Śakuntalā shall be cleanly erased from her husband's memory, yet at the sight of the recognition ring the curse shall break."

At the time of his return to the capital the king has given his signet ring to Śakuntalā, the friends feel that the same ring will save her. They decide to tell no one of the incident, so that Śakuntalā may not be perturbed.

The next scene opens in the teerful glimmer of the languid dawn, where in a very suggestive stanza a pupil of sage Kaṇva compares the strange changes of life with the simultaneous rise and fall of heaven's brightest luminaries. Sage Kaṇva after his return to the hermitage knows by his divine power about the marriage of Śakuntalā with king Duśyanta and her pregnancy from him. He decides to send her under the escort of his trustworthy pupils and Gautamī to the king. Now starts another scene of leave-taking. This is so pathetic, heart rending and touching that even a stone heart can not remain unshaken when Śakuntalā starts from hermit. Hard of heart must he be who can read the Act without tears in his eyes.What delicate leave-taking of the tree and plants, of the deer and peacock, of the Vanjyotsnā, of the doe that is slow by the weight of young, of the fawn, her foster-child, that would fain prevent her going and catches the end of her garment, and lastly of the friends of her childhood and her father. What a linegreing farewell! who can tear the fond parent from his beloved child? How the truth of life comes forth through a prākrit verse ? All these point to the keen observation of the poet. Fickle minded Śakuntalā fails to ascertain, which life would be better for her, of hermitage or of a

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

harem of a king. Śakuntalā finds herself between two worlds, the one (hermit) now lost to her, and the other (king's harem) is dark and uncertain. Taking into consideration her fear (if the king had forgotten their union) the friends suggest to her to show the recognition ring, in case he hesitates to recognize her. They advise her to take care of herself. After this, Śakuntalā with a heart, heavy with grief bids farewell to her forest home.

In this act the lyrical element of the play reaches its climex. It produces forth a picture of great experience of life and the poet makes the nature echo the feelings of the characters. Meanwhile we reach the second portion of the drama. In passing from the fourth act to fifth we suddenly enter a new atmosphere. Here the poet momentarily draws aside the curtain from the king's love affairs. We listen to a woman's voice singing in an impassioned strain, it is a taunt to the king for his forgetting of Haṁspādikā, on account of empress Vāsumatī. Here we find the king away from all pleasures. He seems to be heart-striken and vexed.

When the pupils of sage Kaṇva escort Śakuntalā into the royal court, the scene of hermitage disappears from our sight and with pupils of sage Kaṇva we too feel that we have entered an altogether new world.

The singing of Haṁsapādikā causes a strange disturbance in Duśyanta's soul. It appears as if his heart is filled with sweet pain. This remarkable song is included here to show the effect of music and beauty.

The repudiation scene is the most remarkable one in the whole drama. Śakuntalā reaches the king's court, with her escort. Gautamī requests the king to receive his wife Śakuntalā and conveys the message of sage Kaṇva to him. But the king denies having had any thing to do with Śakuntalā. He does not recognize her when her veil is removed, and due to the bad luck of Śakuntalā the recognition ring has already been lost. Thus when direct evidence fails to prove Śakuntalā's claim, the poor girl (Śakuntalā) makes the pathetic attempt of riviving his memory by verbal testimony. But the king cuts all these points like a sharp knife. When every effort of her fails she thinks that in her innocence she should not have given her honour to such a person whose mouth drops honey, but whose heart is filled with poison. Looking at the behaviour of the king the pupil of sage Kaṇva sārangrava repudiates the king,

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

and rudely abusing both Duśyanta and Śakuntalā, bids them farewell, and the scene ends in the mighty silence.

The fifth act with its painful and tense tragedy strains our nerves to the utmost, and we stand in need of relief. So, with a rare judgment which the poet gives us at the begining of the sixth act, a scene drawn almost raw from life, but one which is of vital importance to the play. He narrates a story about the recovery of the recognition ring from a fisherman, who got it in the stomach of a fish and now trying to sell it when caught red handed by the commissioner of police i.e. the king's brother in law. In the main act the poet describes how the king recoginzes the wrong unwillingly done and of his heart wrenching agony at the loss of his beloved wife. He seeks to console himself with a portrait of his love which he had drawn himself. But when he comes to know that queen Vāsumatī is coming to him, keeping her jealousy in mind he becomes alert. Her presence would have been altogether out of place in a scene of severe penitence and tenderness, and the poet very skilfully avoids it by making the thoughtful queen give precedence to affairs of state. The minister obtains from the king the decision of a law point involving the right to inheritance an episode which only deepens the king's regret by reminding him of his childishness.

The loud cry of the jester, who has been roughly handled by Mātalī, awakens the king from his despair. This is necessary as Mātalī explains-"For bringing the king back to the realization that there are duties superior to personal feeling. Indra (Lord of Gods) requires his help in the war with demons."

We come to the last part of the drama and see the royal court and the capital. We have there a hermit's daughter full of youth with her two companions, exiled in disgrace. But the aspect of the other hermitage where Śakuntalā was living, was quite different from that of above. There, a single boy fills the loving bosom of the entire forest world. Now as before when the king was about to enter sage Kaṇva's āśrama, the throbbing of the right arm of the king indicates to him to his approaching fortune. Hiding behind the creepers he looks towards a boy, who is unruly and mounting a lion's cub, and tearing its mouth with his two little hands shouting—"O' cub of lion, open awfully your mouth, so that I may count your teeth." This scene is arranged in the play most skillfully and delicately in such a manner as it not only pleases the readers

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

but also stuns the king and also compells him to murmur himself- "What fire is in the child?" His heart goes out to him, then as he stretches his hand, the marks of imperial birth are revealed. We reach the climex when after conversation between the king and the child the king touches the magic amulet which he is told, none but his parents only can touch with impunity. Hearing this he realises that this child may be his own son from Śakuntalā and his lost hope has come true. Then comes Śakuntalā on the scene, who due to her misfortune and negligence of her husband appears as an image of incarnate pathos. Her loving heart was full of understanding of forgiveness. She blames only her bad luck which had been fixed for her by some former transgression of sage Durvāsā's hospitality. But under the auspicious of the divine pair and Durvāsā's blessings to her friends Śakuntalā and her boy are united to Duśyanta, and thus earthly paradise is gained by the main characters of the play and satisfaction by the poet, readers and audience.

The Title of the play—

In Abhijñāna Śākuntalam, the signet ring of king Duśyanta has been used as a dominating factor of the play, very skilfully by the great poet Kālidāsa. In the first act of the play the king Duśyanta offers his signet ring to Śakuntalā's friend to redeem the debt she owes her, and in the fourth act, after the curse of sage Durvāsā, when Anasūyā tries to appease his anger and the sage Durvāsā modifies his curse by saying that the curse shall go at the sight of some token of recognition. Though the friends kept quiet to say any thing to Śakuntalā about the curse of sage Durvāsā and why it fall on her, but later on Priyaṁvadā tells us how the king at time of departing from hermitage, put the ring, engraved with his own name, in Śakuntalā's finger to remember him by, and that will save Śakuntalā. Here the poet Kālidāsa very cleverly produces the dramatic irony. The friends, with the desire to spare the feelings of Śakuntalā, decide not to tell any one about the curse, but at the end of act four, when they were unable to overpower their anxiety they merely drop a hint by saying to Śakuntalā that if due to his well mannered harem the king becomes slow to remember his words or her, she should show him the signet ring. But, man proposes, God disposes. The signet ring slipped from Śakuntalā's finger in Śāchi teertha while she was coming to the capital. In the most critical moment when the king refuses to recognize her the only rescue i.e. the signet ring was not there. This moment comes forth in the court

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

scene of fifth act. In the opening scene of act six we see its miraculous recovery from the maw of a carp-fish opened by the fisherman. As soon as it comes in the sight of the king, he remembered every thing related to Śakuntalā. He reviles the ring, but the jester consoles him by pointing to the ring as the one that shows that incredible meetings do take place. Finally in the seventh act when Śakuntalā sees the ring, the king tells her how at the sight of the ring his memory returned. He offers to put it on her finger, but Śakuntalā would not trust it, she would rather have the king wear it.

Keeping all these in mind Dr. C. D. Pandey Comments- "Thus it will be seen that this episode of the ring whose loss prevents the immediate recognition of Śakuntalā is very effectively conceived and woven into the texture of the play. Aptly, therefore, is the play given the name 'Abhijñāna Śākuntala."

Śakuntalā, its inner meaning—

As per etymology, the word Śakuntalā is formed with the union of two words- i.e. Śakunta—the birds and la—nourishment. The whole meaning of it is the child who is nourished by the birds. This is the literal meaning of the title, but its inner meaning is quite different. It seems as if the poet Kālidāsa wants to indicate his views about beauty "The appearance of which gives new feelings at every moment is the true definition of beauty." 'Kshne kshne yannavatamupaiti tadeva roopam ramaneeyatayah'.

So, as the multi-coloured birds are attracting one's mind towards them, accordingly, the skilfully painted Śakuntala's beauty, simplicity, mildness, honeyed tongue etc. qualities make her an unparalleled beauty queen, who attracts our mind immediately with a striking hint—beauty is only to admire not to touch. So, the unique beauty is another meaning of the play. Overriding all these meanings, the inner meaning is more interesting. According to this, it contains the history of a development—the development of flower into fruit, of earth into heaven, of matter into spirit. The drama was meant for translating the whole subject from one world to another, from the sphere of physical beauty to the eternal heaven.

In brief, physical love changed into moral love. Therefore, the poet has made the two lovers undergo a long "tapasyā" (penance) that they may understand truly, eternally. According to

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

the poet, the first union of the lovers has a moral lapse, and later it was converted into moral entity.

Character sketches—

DUṢYANTA: The hero of Abhijñāna Śākuntalam is magnanimous. Qualities like beauty, delicacy, bravery, courage and seriousness are natural to his character. They indicate him as a great person. He is an expert player of war and hunting. Being a great lover, he proves himself a loyal and good natured husband too. He is a unique, passionate and unparalleled warrior too. He is also considered unique in the sphere of self restrainet. During the period of Durvāsā's curse his refusal for unparalleled beauty queen Śakuntalā's recognition proves that he was really a self restrained king, and this puts forth a burning example of self control.

Respect for elders, continuous thinking for welfare of his subjects prove him something more than a mere ideal person. Including sense of duty, hatred for bad qualities and fulfilment of his words, prove him a great person and an ideal king. He hates self praise. At the time of returning from heaven, taking part in the war with demons and defeating them, when Mālatī, the charioteer starts praising him, he gives all his credit to Devarāja Indra (lord of Gods) and keeps quiet. He has keen interest in religion and religious activities. He participates in scholarly discussions. He has a thorough knowledge and interest in song, dance, music and painting. Drawing such a great character the great poet Kālidāsa succeeded in all respects, it can be said honestly.

ŚĀKUNTALĀ: Though Śakuntalā originally comes forth in great epic - 'Mahābhārata' yet going through the play 'Abhijñāna Śākuntalam' we feel the heroine of the play 'Abhijñāna Śākuntalam' by name Śakuntalā is a fresh creation of the great poet Kālidāsa. She is most beautiful, virtuous, chaste and simple. As she grows up in the hermitage, she loves every natural thing i.e. trees, creepers, flowers, birds, animals, rivers, falls, surroundings etc. whole heartedly. Her complete affection seems to be bestowed on nature and natural things. Watering the plants, nourishing the deers, watching the dancing peacocks are her hobbies, and in such activities her sympathetic attitude towards the sub-human beings comes forth and sets an example of her divine greatness. Though she was an adopted daughter of Kulpati Kaṇva (chancellor of

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

hermitage) yet was free from pride. She was fully able to hide her feelings of heart. All these virtues show her greatness in all the spheres mentioned above. Deeply drowned in the memories of her husband, she forgets to welcome sage Durvāsā and appease him, and for the same negligence she was punished by a cruel curse which led her to misery, and shameful condition.

Even though she loves her husband whole-heartedly, blaming her bad luck and not uttering a single word against him she has much respect and affection for her elders, kinsmen, friends. This ideal character is a symbol of a great Indian woman. In brief we can say that in the history of literature the character of Śakuntalā is unparalleled and the like of her is hardly traceable.

SAGE KAṆVA: Sage Kaṇva is described in the play as the supreme authority of the hermitage i.e. Kulapati. He is a perfect Bramhachārī owing a vow of chastity. He performs sacrificial right (maintenance of the sacred fire and offering oblation to it) regularly, and always praise for the universal welfare. Due to his high wellwishing spirit he brought Śakuntalā from the bank of river Mālinī and brought her up as his adopted daughter. He gave her parental love in such a way that she had forgotten her real parents and considered him her real father. The sage became for her both mother and father. Though he was away from all worldly affairs. Sage Kaṇva had a knowledge of the bounds of a house-holder. When he sends Śakuntalā to her husband's house, his knowledge about house-holder's bounds comes forth. He is fully aware of the habits and natures of people. Like a touch stone as soon as one comes into his contact he comes to know his every secret or read thoroughly his mind. At the time of Śakuntalā's departure he teaches her in such a way which leaves an impression on our mind and heart for long and shows his deep knowledge, momentary vision and dutyfulness. In brief, he is an ideal father, great sage, learned scholar and foresighted.

VIDŪṢAKA (The Jester): The poet Kālidāsa succeeded completely in creating the character of the jester. Through him he succeeded in producing the sentiment of humor in the play. The jester always thinks about his belley and talks always about delicious foods to fill it up. He is so talkative and sometime crosses the landmark of conduct. He is unable to digest the secret of any person or of his close friend king Duśyanta. He is described in the play as the pleasure companion of the king. Being a coward and

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

soft hearted by nature he is unable to tolerate pain or difficulty. Though he is not actually a stupid, he knows the art of making fools of others by presenting himself as a fool and or ridiculous person.

ŚĀRAṄGRAVA & ŚĀRADWATA: These two are the pupils of sage Kaṇva. As per the situation, they are experts in social manners and etiquette. They have much respect for their preceptor or chancellor of the Āśrama i.e. sage Kaṇva. They have some knowledge of worldly affairs. They are not mere students but clever in worldly dealings. They know how to behave in a royal-court. Apart from this both the students are different in some manners. While Śāraṅgrava is a student with an appreciative nature, Śāradwata has a philosphers attitude. Śārṁgrava dislikes the atmosphere of a royal—court. Śrādawta feels pity for those who are spending their lives in mortal luxuries. Śārṁgrava is more appreciative but has less power for tolerance. He sometime appears very shrewd as he becomes angry very quickly. But forgiveness, the main feature or quality of Śāradwata which makes him some how better than his friend Śāradwata. His forbearance power makes him a wise one. He takes interest to settle a dispute and is well aware of behaving according to the time, situation and demand.

ANASŪYĀ & PRIYAṀVADĀ: Both are the close friends of Śakuntalā. The nature of both are according to their names i.e. Anasūyā is free from jealousy and Priyaṁvadā is a honeyed tongue girl. Both are having great affection for their friend Śakuntalā. Always they think of the welfare of Śakuntalā. They consider it their sacred duty to think of Śakuntalā's welfare day and night. Both are very clever and well mannered. At the first meeting of Duśyanta with Śakuntalā they have a keen watch on the hermitage so that anyone should not see and know about it. When they find Gautamī is coming they alert Śakuntalā indirectly. When Durvāsā's curse falls on Śakuntalā they please him and seek refuge for their friend. But they did not tell any thing to Śakuntalā about the curse, so that she may not be purturbed. When Śakuntalā departs from them and the hermitage they feel the hermitage has lost its glory, calmness, beauty. There is some difference in their nature. While Anasūyā wants to see Śakuntalā ever happy, Priyaṁvadā takes every thing very light. Anasūyā is serious and teciturn. But Priyaṁvadā is of a cheerful nature whose utterrances

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

are always sweet. Anasūyā is always suspecious but Priyaṁvadā takes quick decision according to the demands of the situation. Anasūyā remains unruffled in all difficult situations but Priyaṁvadā is a girl who gets afraid easily.

Janmastami, 2044 Vikrami.
16th August 1987
21-1-198, Gandhi Bazar,
Opp: High Court,
Hyderabad-500002
Phone: **525009**

Dr. Ved Prakash Shastri,
M.A. (Hindi & Samskrit)
Gold Medalist,
Ph.D., D.Litt., D.Sc.
Sahitya-Ayurved Ratna, Vidya Bhaskar,
Ayurved Brihaspati.

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

B

अभिज्ञानशाकुन्तलस्थपात्राणां परिचयः

पुरुषपात्रगणः

सूत्रधारः	:	नाटकस्य निर्देष्टा, प्रवर्तयिता प्रधाननटः।
दुष्यन्तः	:	नाटकस्य नायको हस्तिनापुराधिपतिः।
सूतः	:	दुष्यन्तस्य सारथिः।
वैखानसः	:	वनवासी तपस्वी
माधव्यः	:	राज्ञो नर्मसचिवो विदूषकः।
भद्रसेनः	:	राज्ञो दुष्यन्तस्य सेनापतिः।
रैवतकः	:	द्वारपालकः।
ऋषिकुमारौ	:	कण्वाश्रमवासिनौ।
करभकः	:	हस्तिनापुरादागतो दूतः।
यजमानशिष्यः	:	महर्षेः कण्वस्य शिष्यविशेषः।
हारीतः	:	महर्षेः कण्वस्य शिष्यविशेषः।
कण्वः	:	शकुन्तलाया रक्षको महर्षिः।
शार्ङ्गरवः, शारद्वतमिश्रः	:	कण्वस्य प्रधान शिष्यौ।
कञ्चुकी	:	पार्वतायननामा सैविदल्लः।
पुरोधाः	:	सोमरातनामा राज्ञो दुष्यन्तस्य पुरोहितः
नागरकः श्यालः	:	नगररक्षको राज्ञः श्यालकः।
सूचकः, जालुकः	:	रक्षिणौ
पुरुषः	:	मुद्रिकाप्राप्तिकारी धीवरः।
मातलिः	:	इन्द्रसारथि।
सर्वदमनः भरतश्च	:	राज्ञः सुतः शाकुन्तलेयः।
मारीचः	:	मरीचेः सुतः कश्यपः।
गालवः	:	कश्यपशिष्यः।

स्त्रीपात्रगणः

शकुन्तला	:	नाटकस्य नायिका, कण्वपालिता पुत्री।
अनसूया, प्रियंवदा	:	शकुन्तलासख्यौ।
गौतमी	:	महर्षेः कण्वस्य धर्मभगिनी।
प्रतिहारी	:	राज्ञः पार्श्ववर्तिनी।
मिश्रकेशी	:	शकुन्तलायाः शुभचिन्तिका सखी।
तापस्यः	:	कण्वाश्रमस्था मुनिपत्न्यः।
परमृतिका, मधुरिका	:	चित्रकरणार्थं विदेशादागतं [illegible]सीद्वयम्।
चतुरिका	:	राज्ञो दासी।
तापसीद्वयम्	:	कश्यपाश्रमस्थं सर्वदमनकरक्षकम्।
अदितिः	:	देवमाता कश्यपपत्नी।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अभिज्ञानशाकुन्तल में प्रयुक्त छन्दों का सपरिचय विवरण

छन्द	मात्रा	कहाँ कहाँ प्रयुक्त हुआ — अंक	श्लोक	छन्द का लक्षण
अनुष्टुप्	८	प्रथम	१,५,६,११,१२,२६	'श्लोके षष्ठं गुरु ज्ञेयं सर्वत्र लघुपञ्चमम्। द्विचतुष्पादयोर्ह्रस्वं सप्तमं दीर्घमन्ययो:'॥
		द्वितीय	१३,१६,१७	
		तृतीय	१,१९,२२	
		पंचम	१४,२४,२६,२९	
		षष्ठ	१४,२२,२३,२८,३२	
		सप्तम	९,१३,१४,१५,२३,२८,२९	
त्रिष्टुप्	११	चतुर्थ	७	चार पक्तियों तथा ११ मात्रा का वैदिक छन्द
शालिनी	११	पंचम	३०	'मात्तौ गौचेच्छालिनी वेदलोकै:'।
रथोद्धता	११	सप्तम	१८	'रात्परैर्नरलगै रथोद्धता'।
द्रुतविलम्बित	१२	प्रथम	११	'द्रुतविलम्बितमाह नभौ भरौ'।
		तृतीय	१८	
		पंचम	२७	
		षष्ठ	८	
		सप्तम	३	
वंशस्थ	१२	प्रथम	१८,२२,२३	'जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ'।
		तृतीय	१३	
		चतुर्थ	१	
		पंचम	१२,१५,१७	
		षष्ठ	१३,१८,२८	
		सप्तम	१०,१६,३०	
प्रहर्षणी	१३	षष्ठ	२७,३०	'त्र्याशाभिर्मनजरगा प्रहर्षणीयम्'
रुचिरा	१३	सप्तम	३५	'जभौ सजौ गितिरूचिरा चतुर्ग्रहै:'।
वसन्ततिलका	१४	प्रथम	८,२७,३१	'उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ ग:'।
		द्वितीय	९,१२	
		तृतीय	१०,२०,२६	
		चतुर्थ	१,२,१०,१२,१३,१४,१९	
		पंचम	२,३,६,२२,२३	
		षष्ठ	१२,१६,२०,२५	
		सप्तम	४,६,१७,२५,२६,३२	
मालिनी	१५	प्रथम	१०,१९,२०	'ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकै:'।
		द्वितीय	४	
		तृतीय	३	
		पंचम	७,८,१९	
		सप्तम	७,३४	

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

मन्दाक्रान्ता	१७	प्रथम	१५,३३	'मन्दाक्रान्ताम्बुधिरसनगैर्मो भनौ तौ गयुग्मम्'
		द्वितीय	१४,१५	
शिखरिणी	१७	प्रथम	९,२४	'रसै रुद्रैश्छिन्ना यमनसभलागः शिखरिणी'
		द्वितीय	१०	
		तृतीय	८	
		पंचम	१०	
		षष्ठ	९	
		सप्तम	३३	
हरिणी	१७	तृतीय	१२	'रसयुगहयैर्न्सौ म्रौस्लौ गो तदा हरिणी तदा'।
		चतुर्थ	१८	
		सप्तम	२४	
शार्दूलविक्रीडित	१७	प्रथम	१४,३०	'सूर्याश्वैर्मसजयतताः सगुरवः शार्दूलविक्रीडितम्'।
		द्वितीय	२,५,६	
		तृतीय	९,२५	
		चतुर्थ	४,५,८,१६,१७	
		पंचम	९	
		षष्ठ	४,५,६,१७	
		सप्तम	८,११,१२,२७	
स्रग्धरा	२१	प्रथम	१,७	'मभ्रैर्यानां त्रयेण त्रिमुनियतिसुता स्रग्धरा कीर्तितेयम्'।
वैतालीय अथवा वियोगिनी	१०/११	द्वितीय	१८	'विषमे ससजा गुरुः समे राभरा लोऽथ गुरुर्वियोगिनी'।
		षष्ठ	१	
		सप्तम	१	
अपरवक्त्रा	११/१२	चतुर्थ	९	'अयुजि नमरला गुरुः समे तदपर-वक्त्रमिदं नजौ जरौ'।
		पंचम	१	
औपच्छन्दसिक	११/१२	तृतीय	२३,२४	'पर्यन्ते यौं तथैव (वैतालीयं इव) शेषमौपच्छन्दसिकं सुधीभिरुक्तम्'
		सप्तम्	२०, २१	
पुष्पिताग्रा	१२/१३	प्रथम	३२	'अयुजि नयुगरेफतो यकारो युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा'।
		द्वितीय	३	
		षष्ठ	११	
गीति		प्रथम	४	'आर्यापूर्वार्धसमं द्वितीयमपि भवति यत्र हंसगते। छन्दोविदस्तदानीं गीतिंताममृतवाणि भाषन्ते'॥
		तृतीय	१५	
आर्या		प्रथम	२,३,१३,१६,१७,२१ २५,२८,२९,३४	'यस्याः पादे प्रथमे द्वादशमात्रास्तथा तृतीयेऽपि। अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पञ्चदश साऽऽर्या'॥
		द्वितीय	१,८	
		तृतीय	२,५,६,७,११,१४,१६,१७,२१	

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

		चतुर्थ	११,१५,२०	
		पंचम	११,१३,१६,१८,२१,२८,३१	
		षष्ठ	२,३,७,१५,१९,२१,३०	
		सप्तम	२२	
इन्द्रवज्रा	११	चतुर्थ	२१	'स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः'।
		पंचम	४	
उपजाति	११	द्वितीय	४	'अनन्तरोदीरितलक्ष्म भाजौ पादौ यीयावुपजातयस्ताः'।
		तृतीय	४	
		पंचम	५,२०,२५	
		षष्ठ	१०,२४,२६	
		सप्तम	२,५,१९,३१	

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

नाटकादिलक्षणानि

(१) नाटकम्–

(१) अवस्थानुकृतिर्नाट्यम्—दशरूपक ७।

(२) **वीरशृङ्गारयोरेकः प्रधानं यत्र वर्ण्यते।**
प्रख्यातनायकोपेतं नाटकं तदुदाहृतम्॥

(१) मूल पात्र की अवस्था के अनुकरण को नाटक कहते हैं।

(२) जिस रचना में वीर अथवा शृंगार इन दोनों रसों में से कोई एक प्रधान रूप से वर्णित हो तथा अन्य रस उसके अंग रूप हों एवं जिसका नायक जगविख्यात हो उसे आचार्यों ने 'नाटक' कहा है।

(1) Drama is the imitaton of situations.

(2) The work which deseribes śṛṅgāra (the erotic) or vira (the heroic) or (some times karuṇa-pathetice) as its main sentiment (Rasa) and others i.e. Hāsya-comic, Raudra-furious, Bhayānaka-terrible, Vibhatsa-loathsome, Adbhuta-the marvellous and śanta-the-quietistic, being introduced as conductive to its development and which has a very famous hero is called as Natakam—a drama.

(According to Sāhitya Darpaṇa besides the above mentioned qualities a drama must have the following merits, its hero should be of the dhīrodatta class and this (Nātaka) may consist of five to ten acts. Its whole matter should be well determind. The hero is required to be modest, decorous, comely (pleasant), munificent, civil of sweet address, eloquent, sprung from a noble family and must be very famous.

(२) पूर्वरङ्गः—

यन्नाट्यवस्तुतः पूर्वं रङ्गविघ्नोपशान्तये।
कुशीलवाः प्रकुर्वन्ति पूर्वरङ्गः स उच्यते॥

नाट्य वस्तु से पूर्वरङ्ग (नाट्यशाला) के विघ्नों को दूर करने के लिए नर्तक लोग जो कुछ करते हैं, उसे पूर्वरङ्ग कहते हैं।

While before commencement of the play for removel of obstacles of the theatre or play the assistants of the stage manager or dancers perform something that is called pūrvaraiṅga.

(After the sūtradhāra's exit, probably another actor the sthāpaka took his place at the conclusion of the ceremony known as pūrvaraṅga. As it was this sthāpaka who comes to the stage now, it was natural that this part of the introductory ceremony come to be designated the sthāpanā.)

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

(३) नेपथ्यम्—

कुशीलवकुटुम्बस्य स्थलं नेपथ्यमुच्यते'।

नटों के रहने (वेशादि परिवर्तन करने) के स्थान को नेपथ्य कहते हैं।

A dramatic device for the entry of characters is called Népathyam (behind the curtain).

The word is derived in "Vyākhyā-sudhā" Thus

'निनो नेत्रस्य नेनेतुर्वा पथ्यम्' Where नि-eye, नि-a leader.

It means 1. curtain, 2. The tiring room, 3. The actor's costume and 4. The decoration or toilet.

'नेपथ्यं स्याज्जवनिका रङ्गभूमिः प्रसाधनम्'। तथा—
'रागादिव्यञ्जको वेशो नटे नेपथ्यमुच्यते''।

(४) नान्दी—

आशीर्वचनसंयुक्ता स्तुतिर्यस्मात् प्रयुज्यते।
देवद्विजनृपादीनां तस्मान्नान्दीति संज्ञिता॥

—नाट्यशास्त्र ५। २४-२५ तथा सा० दर्पण

मङ्गल्यशङ्खचन्द्राब्जकोककैरवशंसिनी ।
पदैर्युक्ता द्वादशभिरष्टाभिर्वा पदैरुत॥ —सा०द०
सूत्रधारः पठेत्तत्र मध्यमं स्वरमाश्रित।
नान्दी पदैर्द्वादशभिरष्टाभिर्वाप्यलंकृताम्॥—ना०शा० ५/१०६-१०७

जिसमें देवता, ब्राह्मण और राजाओं की आशीर्वादात्मक स्तुति की जाती है उसे नान्दी कहते हैं।

जहाँ सूत्रधार द्वारा आठ या बारह पदों में मांगलिक शंख, चन्द्र, कमल, कोक, कैरव आदि के निर्देशपूर्वक स्तुति की जाती है, उस स्तुति को नान्दी कहते हैं।

Where in the divinites, bramhṇas, gods and the kings delight by the prayer.

To mark the actual commencement of the performance of a poet's play Nāndi is a verse or group of verses containing a benedication. This is the technical Nāndī. It has eight or twelve padās (stanzas) and is recited by the stage manager (sūtrādhāra) in the middle tone.

(५) आमुखं, स्थापना, प्रस्तावना वा—

सूत्रधारो नटीं ब्रूते मारिषं वा विदूषकम्।
स्वकार्यं प्रस्तुताक्षेपि चित्रोक्त्या यत्तदामुखम्॥
स्थाप्यते कथावस्त्वादि अस्याम् इति स्थापना।
सर्वमुखाङ्गवीथ्यङ्गसमेतैर्वाक्यविस्तरैः।
सूत्रधारो यत्र नटी विदूषकनटादिभिः।
संलापद प्रस्तुतं चार्थम् आदिशेत् स्थापना ही सा॥ —रसार्णवसुधाकर

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

नटी विदूषको वापि पारिपार्श्विक एव वा।
सूत्रधारेण सहिताः संलापं यत्र कुर्वते॥
चित्रैर्वाक्यैः स्वकार्योत्थैः प्रस्तुताक्षेपिभिर्मिथः।
आमुखं तत्तु विज्ञेयं नाम्ना प्रस्तावनाऽपि सा॥ —सा०दर्पण

जहाँ सूत्रधार नटी, मारिष या विदूषक से अपने कार्य के विषय में विचित्र उक्ति से इस प्रकार वार्तालाप करें जिससे प्रस्तुत कथा का विषय सभी को विदित हो जाये, उसे आमुख कहते हैं। उसी का अन्य नाम है—प्रस्तावना। प्राचीन कवि भास ने अपने नाटकों में इसी के लिए 'स्थापना' शब्द का प्रयोग किया है। जिससे कथावस्तु आदि की स्थापना की जाये उसे स्थापना कहते हैं।

भरतमुनि के अनुसार—सूत्रधार के पश्चात् सूत्रधार के समान ही गुण एवं आकृति युक्त स्थापक रंगमंच पर आकर नाट्यशाला में उपस्थित दर्शकों को प्रसन्न बनाते हुए, नाटककार का नाम बताकर काव्य की प्रस्थापना की आश्रयभूता प्रस्तावना प्रस्तुत करे। स्थापना वही है जिसके द्वारा नाटक, नाटककार, कथावस्तु का संक्षिप्त परिचय दिया जाता है।

साहित्यदर्पणकार सूत्रधार के साथ चित्रवाक्यों में नटी, विदूषक आदि के उस वार्तलाप को आमुख अथवा प्रस्तावना कहते हैं जिससे उनके भावी कार्य-कलाप का परिचय मिले।

Sthāpanā or prologue, that in which the subject matter of the play is fixed. This is identical with prastāvanā or Āmukha.

The prologue thus contains a conversation of the sūtradhāra (stage manager) with the Natī (his wife) or the vidūṣaka (the jester) or other characters, suggesting the matter of the play. According to others the sūtradhāra converses with his asistants and through it he intrroduces the play, plot of the play in brief and the auther (dramatist) to audience. Sthāpanā is another name for the āmukha or prastāvanā.

(६) प्रवेशकः—

प्रवेशकोऽनुदात्तोक्त्या नीचपात्रप्रयोजितः।
अङ्कद्वयान्तर्विज्ञेयः शेषं निष्कम्भको यथा॥ —सा० द०

प्रवेशक का प्रयोग निम्न उक्ति (कथन) से नीच पात्रों द्वारा कराया जाता है।

The introducer, an interlude acted by inferior characters such as servents, buffoons etc. for the purpose of squainting the audience with events not represented on the stage, but a knowledge of which is essential for the proper comprehension of the drama in what follows (like viṣkambhaka—it connects the story of the drama and sub divisions of the plot, by briefly referring to what has occurred in the intervals of the acts, or what is likely to happen at the end, it never occurs at the begining of the first act.

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

In it the dialogue would not be in an eleveted language.

(७) सूत्रधारः—

१. आसूत्रयन् गुणान् नेतुः कवेरपि च वस्तुनः।
रङ्गप्रसाधनाप्रौढः सूत्रधार इहोदितः॥
नाट्यस्य यदनुष्ठानं तत्सूत्रं स्यात्सबीजकम्।
रङ्गदैवतपूजाकृत् सूत्रधार इति स्मृतः॥
वर्णनीयकथासूत्रं प्रथमं येन सूच्यते।
रङ्गभूमिं समासाद्य सूत्रधारः स उच्यते॥ —संगीतसर्वस्व

२. सूत्रं धारयति इति सूत्रधारः। —नाट्यशास्त्र ३५/४५-५०

३. नाट्योपकरणादीनि सूत्रमित्यभिधीयते।
सूत्रं धारयतीत्यर्थे सूत्रधारो मतो बुधैः॥

४. नाटकीयकथासूत्रं प्रथमं येन सूच्यते।
रङ्गभूमिं समाक्रम्य सूत्रधारः स उच्यते॥

५. चतुरातोद्यनिष्णातोऽनेकभूषासमावृतः।
नानाभाषणतत्त्वज्ञो नीतिशास्त्रार्थतत्त्ववित्॥
वेशोपचारचतुरः पौरेषणविचक्षणः।
नानागतिप्रचारज्ञो रसभावविशारदः॥
नाट्यप्रयोगनिपुणो नानाशिल्पकलान्वितः।
छन्दोविधानतत्त्वज्ञः सर्वशास्त्रविचक्षणः॥
तत्तद्गीतानुगलय कला तालावधारणः।
अवधायप्रयोक्ता च योक्तृणामुपदेशकः॥
एवं गुणगणोपेतः सूत्रधारोऽभिधीयते॥

सूत्रधार—नायक, कवि और नाटक की प्रतिपाद्य वस्तु के गुणों को संक्षेप में सूचित करने वाला सूत्रधार कहलाता है। यह रंगमंच को सजाने में अतीव कुशल होता है।

किये जाने वाले नाटक के सूत्रों को बीज सहित प्रगट करने में चतुर, रंगमंच पर आकर देवताओं की स्तुति (नान्दी) सम्पादित करने वाला सूत्रधार कहलाता है।

वर्णन किया जाने वाला (दिखायी जाने वाली) कथा के सूत्र को जो नाटक के आरम्भ में रंगमंच पर आकर सूचित करता है, उसे सूत्रधार कहते हैं।

सूत्र को धारण करने वाला सूत्रधार कहलाता है।

रंगभूमि में आकर सर्वप्रथम नाट्य सूत्र की सूचना देने वाला सूत्रधार कहलाता है।

नाटक के उपकरणों को सूत्र कहते हैं, जो इस सूत्र को धारण करता है, उसे सूत्रधार कहते हैं।

अतीव कुशल, अनेक प्रकार की वेशभूषा धारण करने वाला, नाना भाषणों के तत्त्व को जानने वाला, नीतिशास्त्र के रहस्य का मर्मज्ञ, वेश धारण करने-कराने में पटु, नागरिकों की विविध कामनाओं का जानकार, नाना चेष्टाओं की अभिव्यक्ति में कुशल, रस और भाव

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

का जानकार, नाट्य प्रयोग में निपुण, नाना शिल्पों के विधान में निपुण, छन्द-प्रयोग का जानकार, सब शास्त्रों में निपुण; गीत, लय, ताल आदि का जानकार, समझकर विषय का प्रयोक्ता, योजकों को उपदेश देने में कुशल आदि गुणों से युक्त व्यक्ति को सूत्रधार कहते हैं।

Sūtradhāra (The stage manager) This is the principal character who arranges the cast of characters and instructs them. He takes a permanent part in the prastāvanā or prelude. According to Nāṭyaśāstra, sūtradhāra means one who holds the thread of the drama. The word is taken by 'Pischel' to suggest that the representation of Sanskrit drama procceds and progressed originally from puppet shows. The sūtradhāra dressed in the manner required for the play. He pleased the audience by a description of some reason.He reffered to the plot of drama, gave the name of poet etc.

(८) विदूषकः (Jester of Buffoon)—

विकृताङ्गवचोवेषैर्हास्यकारी विदूषकः। —रसार्णवसुधाकर १/९२

कुसुमवसन्ताद्यभिधः कर्मवपुर्वेशभाषाद्यैः।
हास्यकरः कलहरतिर्विदूषकः स्यात्स्वकर्मज्ञः॥ —सा०द० ३/४९

..................अन्यः हास्यकृत् च विदूषकः॥ —दशरूपक १०/९

प्रकृत्युत्पन्नप्रतिभो नर्मकृतानर्मगर्भनिर्वेद्यः।
यस्तु विदूषितरचनो विदूषको नाम विज्ञेयः॥
विदूषकस्यापि गतिर्हास्यत्रयसमन्विता।
अङ्गवाक्यकृतं हास्यं हास्यं नेपथ्यजं तथा॥
दन्तुरः खलतिः कुब्जः खञ्जश्च विकृताननः।
य ईदृशः प्रवेशः स्यादङ्गास्यं तु तद् भवेत्॥

—नाट्यशास्त्र ३५/७१, १३/१२६,१३७

विदूषकविटादीनां पाठ्यं तु प्राकृतं भवेत्।
वेशेषेण दूषयति असौ विदूषकः॥

जो अपने विकृत अंगों, ऊटपटांग कथनों तथा विचित्र वेशों से हास्य की सृष्टि करे, उसे विदूषक कहते हैं।

साहित्यदर्पण के अनुसार पुष्प अथवा ऋतुपरक नाम वाले, कर्म (चेष्टा), वेश, शरीर तथा भाषा की दृष्टि से हास्य उत्पन्न करने वाले, कलह (झगड़ा लगाने) में रुचि रखने वाले एवं अपने कर्म को यथावत् सम्पादित करने में कुशल पात्र को विदूषक कहते हैं। दशरूपक के अनुसार हास्य करने वाले (हँसने-हँसाने वाले) को विदूषक कहते हैं।

नाट्यशास्त्र के अनुसार स्वभाव से ही प्रतिभासम्पन्न, नर्मसचिव, रहस्य से परिचित, विचित्र वेश-भूषा वाले पात्र को विदूषक कहते हैं। विदूषक वाणी या अंग द्वारा तथा नेपथ्य में रहकर तीन प्रकार से हास्य उत्पन्न करता है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

लम्बे-लम्बे दाँत, कुबड़ा, खञ्ज, कुरूप आदि विशेषताओं द्वारा दर्शकों को हँसाने वाला विदूषक कहलाता है। यह प्राकृत भाषा का प्रयोग करता है। यह राजा का नर्मसचिव तो होता ही है, शृंगार में उसका सहायक भी होता है। साहित्यदर्पण में कहा गया है—

शृङ्गारेऽस्य सहाया विटचेटविदूषकाद्याः।
भक्ता नर्मसु निपुणाः कुपितवधूमानभञ्जनाः शुद्धाः॥

The jester is the humorous companion and the trusted friend of the hero in the play, who excites mirth (gladness) by his quaint dress, speeches, gestures, appearances etc, and by allowing himself to be made the butt of redicule by almost everybody. He is usually a Brāhmaṇa, but (target) he is innocent of any learning or behaviour of a true orthodox Brāhmaṇa. His features are usually ugly and he makes refrences in his speech to eating, dinners etc. He is the 'Narmasuhṛit' of kings and help them in there intrigues of love. He speaks in Prākṛita language. He is a comic-character usually. He is so called because he finds fault with everybody.

(९) काञ्चुकीयः (Chamberlain)—

अन्तःपुरचरो वृद्धो विप्रो गुणगणान्वितः।
सर्वकार्यार्थकुशलः कञ्चुकीत्यभिधीयते॥ —भरत मुनि

ये नित्यं सत्यसम्पन्नाः कामदोषविवर्जिताः।
ज्ञानविज्ञानकुशलाः काञ्चुकीयास्तु ते स्मृताः॥ —मातृगुप्ताचार्यः

कञ्चुकः अस्य अस्ति इति—कञ्चुकी, कञ्चुकी एव काञ्चुकीयः।
Vārtika on pāṇini 4/2/138

भरत मुनि के अनुसार अन्तःपुर में स्वच्छन्द आने-जाने वाले वृद्ध ब्राह्मण, गुणी, सभी कार्य करने में निपुण व्यक्ति (चरित्र या पात्र) को कञ्चुकी कहते हैं।

मातृगुप्ताचार्य के अनुसार सदैव सत्य बोलने वाले, काम-दोष रहित, ज्ञान-विज्ञान में निपुण व्यक्तियों को कञ्चुकी कहते हैं।

कञ्चुकधारी व्यक्ति को काञ्चुकीय कहते हैं।

Chambearlain—He is so called because he wore a kancuka, a robe indicative of his office of chamberlain. It must have been a jacket. In Abhijñāśākuntalam chamberlain is also a character.

According to renowned scholars the chamberlain should be an old man, a brāmaṇa by caste, having good qualities, expert in all affairs, as he was to go about in the inner palace i.e. Antaḥpura.

(१०) विष्कम्भकः—

वृत्तवर्तिष्यमाणानां कथांशानां निदर्शकः।
संक्षिप्तार्थस्तु विष्कम्भ आदावङ्कस्य दर्शितः॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

मध्येन मध्यमाभ्यां वा पात्राभ्यां सम्प्रयोजितः।
शुद्धः स्यात् स तु सङ्कीर्णो नीचमध्यमकल्पितः॥ —सा० द०

पहले कही गयी और भविष्य में कही जाने वाली कथाओं का निदर्शक कथा का संक्षेप करने वाला अङ्क विष्कम्भक कहलाता है। अङ्क के आदि में इसका प्रयोग किया जाता है। जब एक ही मध्यम पात्र अथवा दो मध्यम पात्रों द्वारा इसका प्रयोग होता है तब इसे शुद्ध विष्कम्भक कहते हैं, परन्तु जब नीच और मध्यम दोनों प्रकार के पात्रों द्वारा इसका प्रयोग किया जाता है तब इसे मिश्रविष्कम्भक कहते हैं। इसमें भाषा और घटनाओं का भी मिश्रण पाया जाता है।

A viṣkambhaka or interlude which is mixed i.e. there is a conversation between middling and low characters. It would therefore be carried on in sanskrit and Prākrit.

(११) भरतवाक्यम्—

भरतानां वाक्यं भरतवाक्यम्।

भरतों (नटों) का वाक्य (आशीर्वादात्मक कथन) भरतवाक्य कहलाता है। संस्कृत नाटकों में यह (भरतवाक्य) प्राय: इस रूप में उपलब्ध होता है—

'किं ते भूय: प्रियमुपकरोमि। किमत: परं प्रियमस्ति। तथापि इदमस्तु...... ।'

आपका और क्या प्रियं करूँ? इससे बढ़कर और क्या प्रिय हो सकता है? फिर भी यह हो। आदि। इसे प्रशस्ति भी कहते हैं। जैसे—

'नृपदेशादि शान्तिस्तु प्रशस्तिरभिधीयते' —साहित्यदर्पण ६/१४४

The speech of the actors is remembered is Bharata vākyam (benediction) in Sanskrit lilerature. It is the last verse in a drama sung by all those who act. This almost serves as a stage director. All actors gather on the stage and in a chorus recite this Bharat vākyam i.e. benediction. It may also mean a speech in praise and commemoration of Bharata the originator of the science of drama. The verse is introduced in Sanskrit drama with words like "What shall I do more for you, let it be."

(१२) आकाशभाषितम्—

किं ब्रवीष्येवमित्यादि विना पात्रं ब्रवीति यत्।
श्रुत्वेवानुक्तमप्येकस्तत् स्यादाकाशभाषितम्॥
दूरस्थं भाषणं यत्स्यादशरीरनिवेदनम्।
परीक्षान्तरितं वाक्यं तदाकाशे निगद्यते॥ —भरत मुनि

बिना किसी दूसरे पात्र के ही बिना कही हुई बात को इस प्रकार कहकर—'क्या कहते हो?' जो बात रंगमंच पर किसी पात्र द्वारा कही जाय उसे नाट्क में आकाशभाषित कहते हैं।

The sense of "in the air" is used in dramas as a stage direction when a character on the stage asks questions to some one not on the

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

stage and listens to an imaginary speech supposed to be a reply, which is usually introduced by the words—"किं ब्रवीषि"? (What do you say?).

(१३) अपवारितम्—

रहस्यं कथ्यतेऽन्यस्य परावृत्यापवारितम्।

जो रहस्य किसी एक पात्र से छिपाकर दूसरे पात्र से घूमकर कहा जाय, उसे अपवारित कहते हैं।

This word is just opposite to 'प्रकाशम्' (openly). It's meaning is concealed or secret in manner, frequently occuring in dramas in the sense of 'Apart' 'asides to another'. It is speaking in such a way that only the person addressed to may hear it.

साहित्यदर्पण में इसका रूप (लक्षण) इस प्रकार मिलता है—

तद् भवेदपवारितम् रहस्यं तु यदन्यस्य परावृत्त्य प्रकाश्यते।
त्रिपताकाकरेणान्यानपवार्यान्तरा कथा॥

(१४) प्रकाशम्—सर्वश्राव्यं प्रकाशं स्यात्।

जो बात सबको सुनाकर अर्थात् स्पष्टतः कही जाय उसे प्रकाश कहते हैं।

Prakāśa is a technical term of sanskrit dramas. It is just opposite to-'to him/her self'. Its meaning is aloud' or audibly. It is used as a staga directon in sanskrit dramas.

When some character speaks in such a way that all the audience can easily and clearly hear it than it is called as 'Prakāśa' or 'aloud'.

(१५) स्वगतम्—

'अश्राव्यं खलु यद्वस्तु तदिह स्वगतं मतम्'।

जो बात सुनाने योग्य नहीं होती, उसे ही नाटक में 'स्वगत' कहा जाता है। नाटक में जहाँ इस शब्द का प्रयोग होता है वहाँ इसका अर्थ यही होता है कि अमुक बात मुँह से उच्चारण करने के बदले मन में ही सोच ली गई है, परन्तु उसे प्रस्तुत इस प्रकार किया जाता है जिससे दर्शक भी उसे सुन लें।

In theatrical language 'Svagatam' means to oneself or a soliloquy (talking to one's self) when a character is expected to think by himself and not to speak loudly is a 'svagatam'. It is quite different from "to himself", because the concerned character in such a tone that every one can easily hear his words or uttlerings and thus the stage manager succeeds to give a clear picture of the concerned character's mind or thinking.

(१६) नायकः—

त्यागी कृती कुलीनः सुश्रीको रूपयौवनोत्साही।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

दक्षोऽनुरक्तलोकस्तेजो वैदग्ध्यशीलवान्नेता॥

दानी, सुयोग्य, कुलीन, श्रीसम्पन्न, रूप-यौवन से परिपूर्ण, उत्साही, चतुर लोगों का प्रेमी, तेजस्वी, उदार और सुशील पुरुष को नाट्यशास्त्राचार्यों ने 'नायक' संज्ञा से अभिहित किया है।

The hero of a poetic composition(play or drama) is regarded as 'Nāyaka' (hero). He is expected to be as under. He must he liberal, learned (wise), well born, wealthy, beautiful, youthful, courageous, clever, pleasing natured (liking his subject), noble (famous), smart having good conduct, courteous and broad minded.

Thus one who posses above mentioned qualities is called as Nāyaka or Hero.

(१७) प्रयोगातिशयः—

यदि प्रयोग एकस्मिन् प्रयोगोऽन्यः प्रयुज्यते।
तेन पात्रप्रवेशश्चेत् प्रयोगातिशयस्तदा॥ —साहित्यदर्पण १९२

यदि एक ही प्रयोग में दूसरा प्रयोग भी आरम्भ हो जाये और उसी के द्वारा पात्र का प्रवेश हो तो उसे 'प्रयोगातिशय' कहते हैं। यह प्रस्तावना का ही एक प्रकार है।

The Sāhitya Darpaṇa thus definss it—"It is one of the five kinds of 'prastāvanā' or prologue in which a part or performance is superseded by another in such a manner that a character is suddenly brought on the stage i.e. where the sūtradhāra (staga manager) goes out hinting the entrance of a character and thus performs a part superseding that which he has apparently intended for his own, viz. dancing, that is called Prayogātiśaya.

(१८) शृंगार—

रम्यदेशकलाकालदेशभोगादिसेवनैः ।
प्रमोदात् या रतिः सैव यूनोरन्योन्यरक्तयोः॥
प्रकृष्यमालाशृङ्गारो मधुराङ्गविचेष्टितैः॥

किञ्च—

पुंसः स्त्रियाः स्त्रियाः पुंसि सम्भोगं प्रति या स्पृहा।
स शृङ्गार इति ख्यातः क्रीडारत्यादिकारकः॥ —साहित्यदर्पण २१०

सुन्दर देश, कला, काल, वेश, भोगादि का सेवन करने से जब परस्पर अनुरक्त नायक और नायिका का प्रेम बढता है और फिर जब उसके कारण मनोहर हाव-भाव आदि होने लगते हैं तब उसे शृंगार रस कहते हैं।

साहित्यदर्पण के अनुसार स्त्री-पुरुष की पारस्परिक संभोग के प्रति इच्छा ही शृंगार है और वह (शृंगार ही) क्रीड़ा-रति आदि का कारक है।

Sṛingāra or the sentiment of love, the first of the nine

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

sentiments in poetical composition, is very inportant. It is of two kinds. Saṁyoga (sexual love) and Vipralambha (love in separation).

It is thus defined—when due to beautiful surroundings (garden etc.), art (fine art i.e. music, dance etc.) time (season like spring season etc.), attractive dress (a dress suited to a specific purpose) and enjoyment the love of hero and heroine, increases and thus Hāva (daliences of love) and Bhāva (emotions) serve to develop and strengthen the prevailing sentiment. Then the specific sentiment is regarded as sentiment of love.

(१९) अंकः—

अङ्क इति रूढिशब्दो भावैश्च रसैश्च रोहयत्यर्थान्।
यत्रार्थस्य समाप्तिर्यत्र स बीजस्य भवति संहारः।
किञ्चिदवलग्नबिन्दुः सोऽङ्क इति सदावगन्तव्यः॥

जो अर्थों को भाव और रसों से अंकुरित करता है, जिसमें अनेकों प्रकार के विधान होते हैं, जहाँ एक अर्थ की समाप्ति और बीज का उपसंहार होता है और कुछ बिन्दु का सम्बन्ध होता है, उसे अङ्क कहते हैं। यह अङ्क शब्द रूढि शब्द है।

An act is defined thus—an act of a play or drama is that which invests the meaning with feelings (emotions) and sentiments and has some different types too. It marks the end of one strand (beach) of meaning and a "Bīja" (the thought seed or germ of the plot of a play) and on the other hand it shows some connection (relation) with vindu (a position in drama). Having all such qualities, it is called an Aṅka or Act.

विशेष—

''नाटकेऽस्मिन् धीरोदात्तो दक्षिणो नायको दुष्यन्तः। तृतीयाङ्कपर्यन्तं शकुन्तला कन्या मुग्धा च, ततः परं स्वकीया मध्या च नायिका। नाटकेऽस्मिन् विप्रलम्भशृङ्गारः प्रधान- रसः वीरकरुणादयो गौणभूता रसाः विप्रलम्भशृङ्गारस्तु गान्धर्वविवाहात् प्राक् पूर्वरागात्मकः ततः परं प्रवासरूपः। प्राचुर्येणात्र प्रसादोगुणः वैदर्भी रीतिश्च।''

(२०) विप्रलम्भः—

यत्रतु रतिप्रकृष्टानाभीष्टमुपैति विप्रलम्भोऽसौ। —सा० द० १९०
स च पूर्वरागमानप्रवासकरुणात्मकश्चतुर्धा स्यात्॥ —सा० द० १९१

अनुराग का अभिवर्द्धक शृंगार रस का वियोगात्मक रूप ही विप्रलम्भ कहलाता है। इसके पूर्वराग, मान, प्रवास तथा करुणा परक चार रूप हैं।

The sentiment of love in separation is of the two main kinds—Sṛṅgāra; Saṁyoga and vipralambha.It is described as—

१. अभिलाषविरहेर्ष्याप्रवासशाप हेतुक इति।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

२. यूनोरयुक्तयोर्भावो युक्तयोर्वाथवा मिथः।
विप्रलम्भः स विज्ञेय...... ।—उज्ज्वलनीलमणिः

The love in separation has much importance and without its feeling or experience, no one can full enjoy this sentiment.

(२१) वीरस—

उत्तमप्रकृतिर्वीर उत्साहस्थायिभावकः।
महेन्द्रदैवतो हेमवर्णोऽयं समुदाहृतः॥
आलम्बनविभावस्तु विजेतव्यादयो मताः।
विजेतव्यादि चेष्टाद्यास्तस्योद्दीपनरूपिणः॥
अनुभावस्तु तत्र स्युः सहायान्वेषणादयः।
सञ्चारिणस्तु धृतिमतिगर्वस्मृतितर्करोमाञ्चाः॥
स च दानधर्मयुद्धैर्दयया च समन्वितश्चतुर्द्धा स्यात्। —सा० द० २२४

वीर रस उत्तम प्रकृति का कहा गया है। इसका स्थायीभाव उत्साह है। महेन्द्र इसका देवता और वर्ण हेम माना गया है। विजयेच्छा इसका आलम्बन विभाव है तथा विजयेच्छापूर्वक की जाने वाली चेष्टाएँ उसकी उद्दीपक हैं। धृति, मति, गर्व, स्मृति, तर्क, रोमांच इसके संचारी भाव हैं। दान, धर्म, युद्ध तथा दया के साथ संयुक्त होकर यह चार प्रकार का कहा गया है।

The sentiment of heroism—It is described as subordinate sentiment in Abhijñana Śākuntalam. It is distinguished under four heads—Dānavīra, Dharmavīra, Yuddhavīra, Dayāvīra.

(२२) करुण रस—

इष्टनाशादनिष्टाप्तेः करुणाख्यो रसो भवेत्।
धीरैः कपोतवर्णोऽयं कथितो यमदैवतः॥
शोकोऽत्र स्थायिभावः स्याच्छोच्यमालम्बनं मतम्।
तस्य दाहादिकावस्था भवेदुद्दीपनं पुनः॥
अनुभावा दैवनिन्दा भूपातक्रन्दितादयः।
वैवर्ण्योच्छ्वासनिश्वासस्तम्भप्रलपनानि च॥
निर्वेदमोहापस्मारव्याधिग्लानिस्मृतिश्रमाः ।
विषादजडतोन्मादचिन्ताद्या व्यभिचारिणः॥

इष्टनाश अथवा अनिष्ट की आशंका से उत्पन्न होने वाला रस करुण रस कहलाता है। इसका स्वामी यम तथा वर्ण धूसर बताया गया है। इसका स्थायी भाव है शोक और आलम्बन शोच। दाहादि इसके उद्दीपन हैं; दैव को कोसना, पृथ्वी पर पछाड़ खाना, रोना आदि इसके अनुभाव हैं। निर्वेद, मोह, अपस्मार आदि इसके व्यभिचारी भाव हैं।

The pathetic sentiment is also described in Abhijñāna Śākuntla as a subordinate sentiment.

The pathetic sentiment (karuṇa rasa) with (the permanent

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

state) sorrow (Śoka) as its essence (results) from loss of something cherished and from attaining of something undesired. In consequence of it (there occur) heaving of sighs, drawing of sighs, weeping, paralysis, fomentation, and the like (as consequents); the transitory states (occuring in connection with it) are sleeping, epilepsy, depression, sickness, death, indolence, agitation, despair, stupor (torpidity), insanity, anxiety and so forth.

The Heroic Sentiment—

The heroic sentiment (vīra rasa) is induced by power, good conduct, determination, courage, infatuation, cheerfulness, polity, astonishment, might, and the like (as determinates), and is based on (the permanent state) energy (utsāha). It is of three kinds, having benevolance, fighting or liberality (as consequent). In it (there occur) assurance, arrogance, contentment and joy (as transitory states).

(२३) प्रसाद गुण—

चित्तं व्याप्नोति यः क्षिप्रं शुष्केन्धनमिवानलः।
स प्रसादः समस्तेषु रसेषु रचनासु च॥

Prasāda guṇa is nothing but clearness of style, one of the three Guṇas according to Mammaṭa, who thus defines it—

१. शुष्केन्धनाग्निवत् स्वच्छजलवत्सहसैव यः।
व्याप्नोत्यन्यत्प्रसादोऽसौ सर्वत्र विहितस्थितिः॥ —का० प्र० ८

२. यावदर्थकपदत्वरूपमर्थवैमल्यं प्रसादः॥ अथवा—

३. श्रुतमात्रावाक्यार्थं करतलबदरमिव निवदयती घटना प्रसादस्य॥

सूखी लकड़ियों में अग्नि की भाँति तत्काल चित्त में व्याप्त हो जाने वाला गुण प्रसाद गुण है। अभिज्ञानशाकुन्तल में इसी गुण की सर्वत्र प्रधानता है।

As the fire spreads in the dry woods quickly accordingly this Prasād Guṇa spreads in the heart of a reader immediately and helps him to understand the meaning of the matter.

वैदर्भी रीति—

माधुर्यव्यञ्जकैर्वर्णै रचना ललितात्मिका।
अवृत्तिरल्पवृत्तिर्वा वैदर्भी रीतिरिष्यते॥

माधुर्यव्यञ्जक वर्णों की ललित रचना को जो समासपरक अथवा समास रहित हो, वैदर्भी रीति कहते हैं।

A particular style of composition with or without compound sentences and with sweet words called as vaidarbhī rīti.

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

(२४) धीरोदात्त नायक—

महासत्त्वोऽतिगम्भीरः क्षमावान् अविकत्थनः।
स्थिरो निगूढाहङ्कारो धीरोदात्तो दृढव्रतः॥ द० रू० २/५

अतीव शक्तिशाली, अतीव गंभीर, क्षमावान्, बकवाद न करने वाला, स्थिर, अनहंकारी, दृढ प्रतिज्ञादि विशेषताओं से सम्पन्न नायक को धीरोदात्त नायक कहते हैं।

The self controlled and exalted (Hero) (Dhīrodātta) is of great excellence, excedingly serious, forbearing, not bastful, resolute, with self-assertion, suppressed and firm of purpose.

(२५) दक्षिण नायक—

दक्षिणोऽस्यां सहृदयो अथवा एषेत्वनेकमहिलासु समरागो दक्षिणः कथितः।

एक ऐसा चतुर नायक जो अनुराग तो किसी के प्रति व्यक्त करता है और उसका हृदय किसी और के प्रति संलग्र होता है—दक्षिण नायक कहलाता है।

A clever (Hero) (Dakṣiṇa) is (one that is) kind to her i.e. to his previous love, or a lover (courteous person) who professes attatchment to one mistress, while his heart has been entirely taken up by another.

(२६) मुग्धा नायिका—

मुग्धा नववयःकामा रतौ वामा मृदुः क्रुधि।

मुग्धा नायिका नवयुवक की कामना करने वाली, रतिक्रीडा में अरुचि रखने वाली तथा क्रोध में मदु होती है।

The inexperienced (kind of wife) i. e. Mugdhā has the desire of new youth, is coy, in love and gentle in anger. Mugdhā means a young girl attractive by her youthful simplicity.

(२७) मध्या—

मध्योदया यौवनाङ्गा मोहान्तसुरतक्षमा।

वृद्धिगत यौवन के प्रेम से परिपूर्ण, सुरत-कला-दक्ष नायिका को मध्या नायिका कहा गया है।

The partly experienced (kind of wife) (Madhy has youthful exuberance of love and indulges in love to the point of ecstasy,

(२८) प्रतिहारी—

सन्धिविग्रहसम्बद्धं नानाकार्यसमुत्थितम्।
निवेदयन्ति याः कार्यं प्रतिहार्यस्तु ताः स्मृताः॥

सन्धि-विग्रह से सम्बद्ध अनेक कार्यों से उत्पन्न विविध कार्यों को जो निवेदन करे उसे प्रतिहारी कहते हैं।

A female door-keeper, is that who informs the king the matter related with treaty, disolution etc. and is clever to give such

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

informations in such a way which leaves an impression of her cleverness.

(२९) धूर्त—

मुखपद्मदलाकारं वचश्चन्दनशीतलम्।
हृदयं वज्रकठिनं त्रिविधं धूर्तलक्षणम्॥

जिसका मुख कमल के समान दर्शनीय, वचन चन्दन के समान शीतल, हृदय वज्र के समान कठिन हो उसे धूर्त कहते है।

A gay deceiver is that whase appearence is so charming like a lotus flower, whose honeyed tongue is gust like sandel paste and whose heart is just like thunder bolt.

(३०) चारण—

किङ्किणी वाद्यवेदी च वृतो विकटनर्तकैः।
मर्मज्ञः सर्वरागेषु चतुरश्चारणो मतः॥

किंकिणी, वाद्य, वेदी, विकट, नर्तकादि से परिवृत, सम्पूर्ण रागों का जानकार चतुर व्यक्ति चारण कहलाता है।

A wandering actor or singer is that who has thorough knowledge of all the musical mode and is sorrounded by other actors, instruments etc.

(३१) आसन्नपरिचारिका—

संवाहने च गन्धे च तथा चैव प्रसाधने।
तथाभरणसंयोगमाल्यसंग्रथनेषु च॥
विज्ञेया नामतः सा तु नृपतेः परिचारिका॥

आसन्नपरिचारिका—निकट रह कर सेवा करने वाली उसे कहते है जो संवाहन, गन्धादि लेपन, प्रसाधन करने, हटाने, आभरण पहनाने, माला गूँथने आदि में निपुण हो और ये सारे कार्य कुशलतापूर्वक करने में सिद्ध हस्त हो।

The maid servent who helps the master in all his personal decoration is called as Āsanna paricārikā.

कतिपय-ध्यातव्यलक्षणानि—

(३२) शृंगारलज्जा—

पराङ्मुखीकृतं शीर्षं परावृत्तमुदीरितम्।
तत्कार्यं कोपलज्जादिकृते वक्त्रापसारणे॥
प्रमोदात्मा रतिः सैव यूनोरन्योन्यसक्तयोः।
प्रकृष्यमाणश्रृंगारः.............................. ॥

प्रकृष्ट रति अर्थात् शृंगारपरक लज्जा अथवा कन्याजनसुलभ लज्जा को शृंगारलज्जा कहते हैं। अथवा कामभाव जनित लज्जासूचक बहिर्विकार को शृंगारलज्जा कहते हैं।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

दूसरी ओर धुमाये गये मुख को अपनी ओर घुमाने तथा बढे हुए अधरों को देख क्रोध-लज्जादि प्रगटाने के भाव को शृंगारलज्जा कहते हैं।

Śṛngāra-lajjā—An amorous or love gesture is that which indicates the shyness of heroine at the sight of love gestures of the hero.

(३३) हाव—

भ्रूनेत्रादिविकारैस्तु सम्भोगेच्छाप्रकाशकः।
भाव एवाल्प संलक्ष्य विकारो हाव उच्यते॥

भौंह, नेत्र आदि के संभोग की इच्छाव्यंजक विकारों द्वारा जो-जो भाव अत्यल्परूप में दर्शाया जाता है उसे हाव कहते हैं।

When through amorous play of eyebrows or eyes the feeling or gesture of union is indicated slighthy. That is called as Hāva or amorous sensation.

(३४) अङ्कावतार—

अङ्कान्ते सूचितः पात्रैस्तदङ्कस्या विभागतः।
यत्राङ्कोऽवतरत्येषोऽङ्कावतार इति स्मृतः॥

किसी अंक के अन्त में उसके पात्रों द्वारा विभाग रूप मं जहाँ अंक की उलग से अवतारणा की जाती है उसे अंकावतार कहते हैं।

At the end of an act when a mother act is being introduced by its character as a part of previous act, that is called as Aṅkāvatāra.

(३५) हसित—

विकाशितकपोलान्तमुत्फुल्लामललोचनम्।
किञ्चिल्लक्षितदन्ताग्रं हसितं तद्विदो विदुः॥

जिसमें कपोलों का प्रान्तर भाग खिल उठे, स्वच्छ नेत्र विकसित हो उठें, दाँतों का अग्रभाग कुछ-कुछ चमक उठे उसे हसित कहते हैं।

When the curve cheeks glow sweetly, crystal clear eyes dilate and the teeth some how appear that is called Hasitam.

(३६) विषादः=विषण्णता—

या दृष्टिः पतितापाङ्गा विस्तारितपुटद्वया।
निमेषिण्यस्तु तारा च विषण्णा सा विषादिनी॥

जिसमें दृष्टि अपलक हो जाय, नेत्रकनीनिका स्तब्ध हो जाय उस दृष्टि को विषण्णा या विषादिनी कहते हैं।

When the vision becomes hazy (misty) and the pupil of the eye becomes motionless then the condition is stated as viṣāda.

(३७) उत्कण्ठा—

रागे त्वलब्धविषये वेदना महती तु या।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

संशोषणी तु गात्राणां तामुत्कण्ठां विदुर्बुधाः ॥

प्रेम में अप्राप्त विषय के सम्बन्ध में जो शरीर को सुखा देने में समर्थ महती वेदना होती है उसे विद्वान् उत्कण्ठा कहते हैं।

Utkaṇṭhā or Anxiety—In love affars, the pain which is able to dry the body increases then the state of that one is called as anxiety.

(३८) लावण्य—

मुक्ताफलेषु च्छाया यास्तरलत्वमिवान्तरा।
प्रतिभाति यदङ्गेषु तल्लावण्यमिहोच्यते ॥

मोतियों में छाया (झाँई) की भाँति जो तरलता अंगों में प्रतिबिम्बित होती है उसे लावण्य कहते हैं।

Loveliness or charm—As a reflection under the pearls a liquidised reflection of charm or loveliness appears in the organs of body, that is called as lāvaṇya or loveliness.

(३९) गान्धर्व विवाह—

इच्छायान्योन्यसंयोगः कन्यायाश्च वरस्य च।
गान्धर्वः स तु विज्ञेयो मैथुन्यः कामसम्भवः ॥ मनुः

कन्या और वर का एक-दूसरे की इच्छा से जो संयोग होता है वही मैथुन कर्म के लिए विहित गान्धर्व विवाह है। यह कामवश ही मूर्त रूप लेता है।

When a bride and groom make sexual union being passionate with their own wish that is called Gāndharva type of marriage.

(४०) यात्रासफलतासूचक चिह्नानि—

वामे मधुरवाक् पक्षी वृक्षः पल्लवितोऽग्रतः।
अनुकूलो वहन् वायुः प्रयाणे शुभशंसिनः ॥

यात्राकाल में यदि वाम भाग में मधुर स्वर वाला पक्षी मिले अथवा सामने पल्लवित पुष्पित वृक्ष मिले या वायु अनुकूल बहे तो यात्रा मांगलिक होती है अथवा ये तीनों वस्तुएँ शुभ सूचक हैं।

If at the time of journy a honeyed tongue bird comes to left side or a fully bloomed tree comes forth or the wind is favourable then the journy is called auspicious one.

(४१) चक्रवर्तिचिह्नानि—

यस्य पादतले पद्मं चक्रे वाप्यथ तोरणम्।
अङ्कुशं कुलिशं वापि स राजा भवति ध्रुवम्।

तथा—

आजानुलम्बिनौ बाहू वृत्तौ पीनौ नृपेश्वरे ॥ —सामुद्रिके

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

जिसके पाँव के तलवे में पद्म, चक्र या तोरण हो या अंकुश अथवा वज्र का चिह्न हो वह निश्चय ही चक्रवर्ती राजा बनता है। अथवा—

चक्रवर्ती राजा की भुजाएँ घुटनों तक लम्बी, मांसल और गोलकार होती है।

The signs of an emperor—The emperor is that who has in his feet the following marks—a lotus, a chakra (a dise—a sharp circular missile weapon) or a portal (toraṇa) and a hook and also the thunder bolt With these marks, a person surely becomes an emperor. Or an emperor always have knee touching lengthy arms which remains fleshy and round shaped.

(४२) कामदशा—

दृङ्मनः सङ्ग सङ्कल्पो जागरः कृशता रतिः।
ह्रीत्यागोन्मादमूर्च्छान्ता इत्यनङ्गदशा दश॥

काम की दस दशाएँ हैं— दृष्टि, मन, संग, संकल्प, अनिद्रा, दौर्बल्य, रति, निर्लज्जता, उन्माद, मूर्च्छा। इनके द्वारा व्यक्ति की कामभावपरक दशा उजागर होती है।

Kāma daśā—In the state of passion the following conditions are coming forth of a lover—The sight, mind, union, desire, vigilance (wakefulness), weakness, sexual union (fondness for), shamelessness epilepsy and coma. When the sight becomes steady, mind always thinks about his love, the desire for sexual union compells a person to meat his friend and make union. The person when looses his sleep becomes weak and shameless; falling sickness (epilepcy) overpowers on him then we can say that he has reached to the state of passionate person.

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

श्लोकानामकारादिक्रमेणानुक्रमणी

श्लोका:	पृष्ठानि
अ	
अक्लिष्टबालतरु	३४२
अत: परीक्ष्य	२७३
अद्यापि नूनम्	११४
अधर: किसलयराग:	३२
अध्याक्रान्ता वसति	९८
अनवरतधनुर्ज्या	७९
अनाघ्रातं पुष्पं	९१
अनिशमपि मकर	११६
अनिर्दयोपभोगस्य	१५६
अनुयास्यन् मुनि	५७
अनुकारिणी पूर्वे	१०२
अनुमतगमना शकुन्तला	२०९
अनेन लीलाभरणेन	१५८
अनेन कस्यापि	३९९
अन्तर्हिते शशिनि	१८६
अन्तर्गतप्रार्थन	३७५
अपराधमिमंतत:	१४६
अपयास्यति मे शोक:	२२८
अप्यौत्सुक्ये महति	१५२
अभिमुखे मयि	९२
अभिजनवतो भर्त्तु:	२२४
अभ्यक्तमिव स्नात:	२४८
अभ्युन्नता पुरस्ता	११९
अमी वेदीं परित:	२०५
अयं स ते तिष्ठति	१३४
अयं स यस्मात्	१३५
अयं स ते श्यामल	१६३
अयमगविवरेभ्यश्चातकै	३८०
अरिहसि मे चूअंकुर	३०१
अर्थो हि कन्या परकीय एव	२३०
अर्धपीनस्तनं मातु	३९१

श्लोका:	पृष्ठानि
अशिशिरतैरन्त	१३२
असंशयं क्षत्रपरिग्रह	३७
अस्मान् साधु विचिन्तय	२२०
अस्मात्परं बत	३५५
अस्यास्तुङ्गमिव स्तन	३३२
अहन्यहन्यात्मन एव	३६३
अहिणवमहुलोह	२४०
आ	
आचार इत्यधिकृतेन मया	२३२
आखण्डलसमो भर्त्ता	४२१
आजन्मन: शाठ्य	२७४
आतम्मं हरि अवेष्टं	२९९
आपरितोषाद्विदुषाम्	२
आमूलशुद्धसन्तति	३५७
आलक्ष्यदन्तमुकुला	३९६
इ	
इत: प्रत्यादिष्टा स्वजन	३१९
इदं किलाव्याज	२६
इदमुपहित	२८
इदमन्यपरायण	१४३
इदमप्युपकृतिपक्षे	१६७
इदमुपनतमेवं	२६०
ई	
ईषदिषच्चुंबिआइं	६
उ	
उग्गिणणदब्भकवला	२१०
उत्पक्ष्मणोर्नयनयो	२१६
उत्सृज्य कुसुम	१५०
उदेति पूर्वं कुसुमम्	
उन्नमितैकभ्रूलत	१३६
उपकृत्य हरेस्तथा	३७४

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

श्लोकाः	पृष्ठानि
उपहितस्मृतिरङ्गुलि	
उपोढशब्दा ने रथाङ्ग	३८४
ए	
एकैकमत्र दिवसे दिवसे	३२५
एवमाश्रमविरुद्ध	३९७
एष त्वामभिनवकण्ठ	३६५
एषा कुसुमनिषण्णा	३४१
औ	
औत्सुक्यमात्रमव	२३६
क	
कथं नु तं कोमल	३२७
कठिनमपि मृगाक्ष्या	३०
कर्कन्धूनामुपरि तुहिनं	१८७
का कथा वाण	१११
कामं प्रिया न	७२
कामं प्रत्यादिष्टां	२८४
कार्या सैकतलीनहंस	३३७
किं शीकरैः क्लमविमर्दि	१४९
किं कृतकार्यद्वेषात्	२५९
किन्तावद् व्रतिनामुपोढ	२४६
कुतो धर्मक्रिया	२५३
कुमुदान्येव शशाङ्कः	२७८
कुल्याम्भोभिः	२०
कृता शख्यं हरिणा	३६८
कृतं न कर्णार्पितबन्धनं	३३९
कृतावमर्शामनु	२६२
कृत्ययोर्भिन्न	१०६
कृष्णसारे ददच्चक्षु	८
केयमवगुण्ठनवती	२५१
कः पौरवे वसुमतीं	४३
क्षणात्प्रबोधमायाति	२३३
क्षाम क्षाम कपोल	१२६
क्षौमं केनचिदिन्दु	२००
क्व वयं क्व परोक्ष	१०९

श्लोकाः	पृष्ठानि
ख	
खुरतुरगहतस्तथाहि	
ग	
गच्छति पुरः	६७
गान्धर्वेण विवाहेन	१५३
गाहन्तां महिषा	८३
ग्रीवाभङ्गाभिरामम्	९
च	
चलापाङ्गां दृष्टिं	३९
चारुणा स्फुरितेनाय	१६५
चित्ते निवेश्य परि	९०
चूतानां चिरनिर्गतापि	३०३
ज	
जन्म यस्य	१५
जाने तपसो वीर्यं	११३
ज्वलति चलितेन्धनो	३७१
ण	
णा वेक्खिदो गुरुअणो	२५६
त	
तदाशुकृत	१४
तदेषा भवतः पत्नी	२७६
तपति तनुगात्रि	१३८
तव भवतु विडौजा	४३२
तव कुसुमशरत्वम्	११५
तव सुचरितमङ्गुरीय	३२३
तवास्मि गीत	७
तस्याः पुष्पमयी शरीर	१७९
तस्याग्रभागाद् गृहनीलकण्ठैः	३६२
तीव्राघातादभि	६३
तुरगखुर	६२
तुज्झ न आणे हिअअं	१३७
तुम्हे ज्जेव पमाणं	२७२
त्रिस्रोतसं वहति	३७९
त्वं दूरमपि गच्छन्ती	१५५

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

श्लोकाः	पृष्ठानि
त्वन्मतिः केवला	३७२
त्वमर्हतामग्रसरः	२५५
द	
दर्भाङ्कुरेण चरणः	९४
दर्शनसुखमनुभवतः	३४४
दिष्ट्या शकुन्तला	४२२
दीर्घापाङ्ग विसारि	३२९
दुष्यन्तेनाहितं तेजो	१९३
ध	
धर्म्यास्तपो	१७
न	
न खलु न खलु	१४
न तिर्यगवलोकितं	२७०
न नमयितुमधि	७६
नियमयसि विमार्ग	२३८
निवारितनिमेषा	८७
नीवाराः शुक	१९
नैतच्चित्रं यदयमुदधि	९९
प	
परिग्रहबहुत्वेऽपि	१४४
पातुं न प्रथमं	२०७
पादन्यासं क्षितिधरगुरो	१८८
पिपासाक्षामकण्ठेन	१५९
पुडइणि बत्तंतरिअं	२१८
पुत्रस्य ते शिरस्ययमग्रयायी	४१८
पृष्टा जनेन सम	१२७
प्रजाः प्रजाः स्वा इव	२३४
प्रजागरात् खिलीभूतः	३४५
प्रत्यादिष्ट विशेष	३०९
प्रथमं सारङ्गाक्ष्या	३१०
प्रलोभ्यवस्तुप्रणय	३९४
प्रवर्ततां प्रकृतिहिताय	४३३
प्रागेव जरसा कम्पः	३६१
प्राणानामनिलेन	३८७

श्लोकाः	पृष्ठानि
प्रादुर्भावदशधा स्थितस्य	४१९
भ	
भव हृदय साभिलाषं	५५
भवन्ति नम्रास्तरवः	२५०
भवनेषु सुधासितेषु	४०१
भानुः सकृद्युक्त	२३५
भूत्वा चिराय	२२७
म	
मणिबन्धाद्गलित	१५७
मनोरथाय नाशंसे	३९०
मय्यवमस्मरणे	२७१
महतस्तेजसो बीजं	३९३
महाभागः कामं	२४७
मानुषीभ्यः कथं	५२
मुक्तेषु रश्मिषु	११
मुनिसुताप्रणय	३१३
मुहुरंगुलिसंवृता	१७१
मूढः स्यामहमेषा	२७९
मेद छेदकृशोदरं	८१
मोहान्मया सुतनु	४१४
य	
यतो यतः षट्चरणो	३९
यथा गजे साधु	४२४
यदालोके सूक्ष्मं	१२
यदि यथा वदति	२७७
यदुत्तिष्ठति वर्णे	९६
यद् यद् साधु न	३३१
ययातेरिव शर्मिष्ठा	२०४
या सृष्टिः स्रष्टुराद्या	१
यस्य त्वया व्रणाविरो	२१५
यात्येकतोऽस्तशिखरं	१८५
यास्यत्यद्य शकुन्तलेति	२०२
येन येन वियुज्यन्ते	३५१
यो हनिष्यति वध्यम्	३६७

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

D

श्लोकाः	पृष्ठानि
र	
रथेनानुद्घातस्तिमित	४२८
रम्यान्तरः कमलिनी	२०८
रम्याणि वीक्ष्य मधु	२४३
रम्यं द्वेष्टि यथा	३०६
रहः प्रत्यासत्तिं यदि	१७२
ल	
ललिताप्सरोभवं	८८
लोलां दृष्टिमित	४०
व	
वल्मीकार्धनिमग्न	३८५
वसने परिधूसरे	४०८
वाचं न मिश्रयति	६१
वाष्पेण प्रतिरुद्धेऽपि	४११
विचिन्तयन्ती यमनन्य	१७९
विच्छित्तिशेषैः सुर	३७८
वृथैव संकल्पशतै	११६
वैखानसं किमनया	५४
व्यपदेशमाविलायतुं	२६४
श	
शक्योऽरविन्द	११९
शमप्रधानेषु	८४
शशिकरविशदा	१२३
शहजं किल ये	२८८
शान्तमिदमाश्रमपदं	२२
शायादसि प्रतिहता	४२७
शुद्धान्तदुर्लभ	२४
शुश्रूषस्व गुरून्	२२१

श्लोकाः	पृष्ठानि
शैलानामवरोहतीव	३८१
स	
सख्युंस्ते स किल	३६९
सतीमपि	२५८
सन्दष्टकुसुमशयना	१३९
सम्मीलन्ति न तावद्बन्ध	११८
सरसिजमनुविद्धम्	२९
साक्षात् प्रियामुपगता	३३३
सा निन्दती स्वानि	२८२
सायन्तने सवनकर्मणि	१७३
सिद्ध्यभन्ति कर्मसु	३७७
सुखपरस्य हरेरुभयैः	३७६
सुतनु हृदयात्प्रत्यादेश	४१२
सुभग सलिलावगाहा	५
संकल्पितं प्रथममेव	२१२
संरोपितेऽप्यात्मनि	३५३
स्तनन्यस्तोशीरं	१२२
स्त्रीणामशिक्षित	२६८
स्निग्धं वीक्षितमन्य	७३
स्मर एव तापहेतु	१२९
स्मृतिभिन्नमोहतमसो	४१०
स्रस्तांसावति	५८
स्वप्नो नु माया नु	३२१
स्वसुखनिरभिलाषः	२३७
स्वायम्भुवान्मरीचेर्यः	३८३
स्वित्राङ्गुलिविनिवेशात्	३३५
ह	
हरकोपाग्नि--धस्य	१६१

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection